इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 10

प्रेमचंद की कहानियाँ

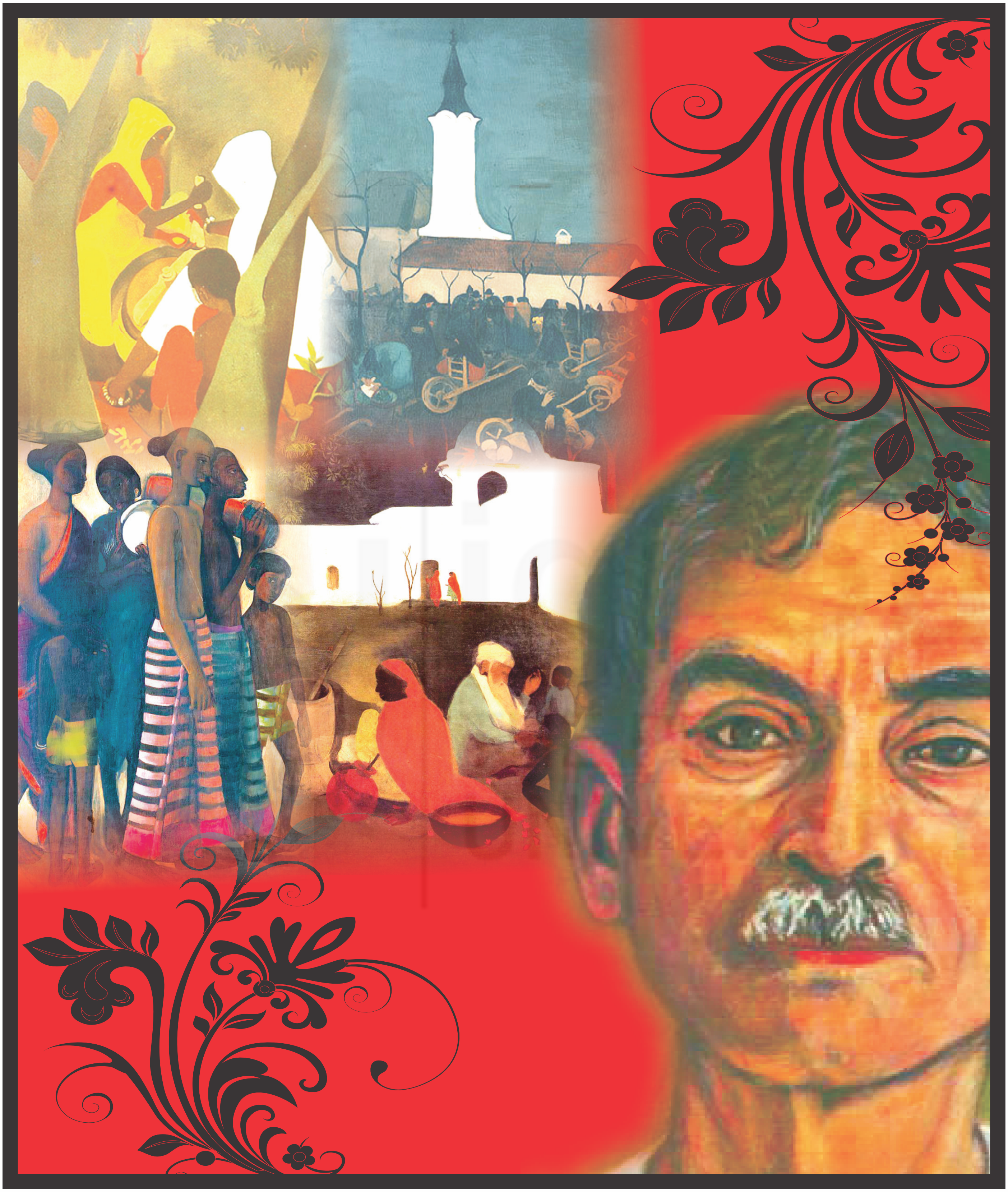

प्रेमचंद की कहानियाँ

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-11
प्रेमचंद की कहानियाँ

खंड

2

इकाई 5

प्रेमचंद की कहानी-कला **5**

इकाई 6

प्रेमचंद की कहानियाँ और हिंदी आलोचना **17**

इकाई 7

''मनोवृत्ति'' : विश्लेषण और मूल्यांकन **28**

इकाई 8

''बूढ़ी काकी'' : विश्लेषण और मूल्यांकन **38**

इकाई 9

''बेटों वाली विधवा'' : **विश्लेषण और मूल्यांकन** **48**

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
भारतीय भाषा केन्द्र जे.एन.यू., नई दिल्ली

श्री ज्ञानरंजन
जबलपुर, मध्य प्रदेश

प्रो. रामदेव शुक्ल
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दी.,द.,उ.,गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. विजय बहादुर सिंह
भोपाल, मध्य प्रदेश

संकाय सदस्य
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
श्री कपिल देव गोरखपुर, उत्तर प्रदेश	5
डॉ. सत्यकेतु सांकृत प्रोफेसर (हिन्दी) अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली	6
श्री कपिल देव गोरखपुर, उत्तर प्रदेश	7
डॉ. अश्विनी कुमार शुक्ल हिंदी विभाग, पी.जी कॉलेज, बांदा, उत्तर प्रदेश	8–9

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन,
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव,
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग: श्री मनोज कुमार सहनी

सामग्री निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

अक्तूबर, 2016

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2016*

ISBN-978-93-86100-94-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : “Agro based Environment Friendly”

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्पूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिंटर्स, 12/38, साइट-IV, साहिबाबाद इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद, (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम का परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के दूसरे पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' का दूसरा खण्ड है। इस खण्ड में कुल पाँच इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं –

इकाई-5 प्रेमचंद की कहानी कला

इकाई-6 प्रेमचंद की कहानियाँ और हिंदी आलोचना

इकाई-7 ''मनोवृत्ति'' कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-8 ''बूढ़ी काकी'' कहानी का विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-9 ''बेटों वाली विधवा'' कहानी का विश्लेशण और मूल्यांकन

इस खंड में प्रेमचंद की कहानी कला, प्रेमचंद की कहानियों की विभिन्न आलोचकों द्वारा की आलोचना और मनोवृत्ति, बूढ़ी काकी एवं बेटों वाली विधवा जैसी महत्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण दिया गया है। इस खंड को पढ़ने के पश्चात आप प्रेमचंद की कहानी कला से भली-भांति परिचित हो सकेंगी/सकेंगे। साथ ही आप विभिन्न आलोचकों के उन मतों से परिचित होंगी/होंगे जो समय-समय पर उन आलोचकों द्वारा प्रेमचंद की कहानियों पर व्यक्त किए गए हैं। इस खंड की तीनों कहानियाँ प्रेमचंद की स्त्री दृष्टि के साथ ही उनकी व्यापक सांस्कृतिक दृष्टि को रेखांकित करती हैं।

हमें विश्वास है, इस खंड के अध्ययन के पश्चात आपकी कहानी संबंधी समझ का विस्तार होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रेमचंद जैसे कालजयी रचनाकार की रचनाओं से गुजरने पर चित्त और विवेक का विरेचन और विस्तार होता ही है।

शुभकामनाओं सहित।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 प्रेमचंद की कहानी-कला

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय आख्यान-परम्परा

- 5.2.1 आख्यायिका और कथा
- 5.2.2 आख्यायिका बनाम कहानी
- 5.2.3 आधुनिक कहानी

5.3 कहानी में 'कला' का अर्थ और प्रयोजन

5.4 हिन्दी कहानी में प्रेमचंद का हस्तक्षेप

5.5 कहानी के बारे में प्रेमचंद के विचार

5.6 प्रेमचंद की कहानी-कला

- 5.6.1 वर्ण्य विषय
- 5.6.2 वर्णन-कला और चरित्र-चित्रण
- 5.6.3 भाषा-शिल्प और सौंदर्य चेतना

5.7 प्रेमचंद की कलात्मक उपलब्धियां

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास

5.0 उद्देश्य

यह एम.ए.हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम ''प्रेमचंद की कहानियाँ'' के दूसरे खण्ड की पहली और कुल मिलाकर पाँचवीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रेमचंद से पहले के कहानीकारों और उनकी कहानियों की विषय वस्तु और कहानी-कला के बारे में जान सकेंगे/सकेंगी;
- प्रेमचंद की कहानी कला के विविध पक्षों– जैसे,उनकी कहानियों के वस्तु और शिल्प पक्ष के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे/सकेंगी;
- इस इकाई में आप यह जान सकेंगे कि प्रेमचंद ने कहानी को सम्भ्रातवर्गीय जीवन के दायरे से निकालकर किस तरह भारतीय गरीब किसान और मजदूर की जिंदगियों का दुख-दर्द चित्रित करने की तरफ मोड़कर साहित्य में कला के अर्थ और प्रयोजन की पारम्परिक धारणा को ही बदल दिया;
- इस इकाई में आप कहानी-कला के तमाम तत्वों पर विचार करेंगे और प्रेमचंद की कहानियों के मूल्यपरक सौंदर्य का मूल्यांकन करने के विविध पक्षों की जानकारी प्राप्त करेंगे/करेंगी;
- इस इकाई का उद्देश्य कहानी लेखन के क्षेत्र में प्रेमचंद की कलात्मक उपलब्धियों को दिखाना है। आप देख सकेंगे कि प्रेमचंद ने कहानी-कला को किस तरह एक अलंघ्य ऊंचाई प्रदान की।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सबसे पहले हम कहानी शब्द से व्यंजित होने वाले अभिप्राय और इसके ऐतिहासिक विकास-क्रम की संक्षिप्त चर्चा करेंगे। इसके उपरान्त संक्षेप में कहानी के मूलभूत तत्वों और भाषा-शिल्प के ऐतिहासिक विकासक्रम का अवलोकन करते हुए कहानी के परम्परागत रूपों की चर्चा करेंगे फिर उन परम्परागत रूपों से आधुनिक कहानी को अलगाने वाले तत्वों पर प्रकाश डालेंगे। तत्पश्चात कला का अर्थ और प्रयोजन बताने का प्रयास करेंगे। फिर प्रेमचंद की कहानियों के विशेष संदर्भ में कहानी-कला पर चर्चा करते हुए यह स्पष्ट करेंगे कि कला अपने आप में साहित्य का कोई केन्द्रीय मूल्य नहीं है। साहित्य में कला की सार्थकता किसी बोध, विचार या संवेदना, अर्थात रचना के उद्देश्य को प्रभावी रूप से सम्प्रेषित करने में है। रूप की तुलना में रचना की अंतर्वस्तु को समृद्ध करने वाली कला ही वास्तव में सार्थक कला है। इससे इतर कला का कोई मूल्य नहीं है। प्रेमचंद की कहानी-कला पर चर्चा के प्रसंग में यह सब जानना आवश्यक इसलिए है कि प्रेमचंद स्वयं साहित्य में कला के नाम पर रूपवाद के प्रबल विरोधी थे।

5.2 भारतीय आख्यान-परम्परा

इस अध्याय में हम पहले उस इतिहास की चर्चा करेंगे जिससे हिन्दी कहानी का परम्परागत सम्बन्ध जुड़ता है। जिसे आज हम कहानी के नाम से जानते हैं उसके विकास की ऐतिहासिक धारा बहुत पुरानी है। इसके निर्माण में योरोपीय और भारतीय दोनों धाराओं का योगदान सिद्ध है। संस्कृत साहित्य में कहानी का अति प्राचीन पयार्य कथा है जो थोड़े बहुत अंतर के साथ आख्यान, उपाख्यान, आख्यायिका, वृत्त, इतिवृत्त, गाथा वार्ता, चरित आदि नामों से प्रचलन में रही है। कथा अथवा किस्सागोई की शुरुआत कब और कहाँ हुई इसके बारे में ठीक-ठीक बता पाना सम्भव नहीं है। प्रेमचंद ने लिखा है कि ''कहानी का जन्म तो उसी समय हुआ जब आदमी ने बोलना सीखा, लेकिन प्राचीन कथा साहित्य का हमें जो कुछ ज्ञान है, वह कथा सरित्सागर, ईसप की कहानियां और अलिफ लैला आदि पुस्तकों से हुआ है। इन कहानियों का मुख्य लक्षण कथा वैचित्र्य था। मानव हृदय को वैचित्र्य से सदैव प्रेम रहा है। अनोखी घटनाओं को सुनकर हम आज भी प्रसन्न होते हैं।'' कथा शब्द ही अपभ्रंश में कहा में बदलकर क्रमशः कहनी और कहानी बन जाता है। सभ्यता के आरम्भिक दौर में मनुष्य ने जब किसी अनोखी वस्तु, प्राणी या घटना के बारे में कुछ बढ़ा-चढ़ाकर रोचक अंदाज में बयान करने की कोशिश की होगी तो स्वाभाविक रूप से लोगों में सुनने की ललक पैदा हुई होगी। लोक साहित्य और किस्सागोई की कला का विकास इसी तरह हुआ माना जा सकता है। किस्सागोई रसात्मक ढंग से किसी घटना या स्थिति का वर्णन करने की कला है। मनोरंजन करना इसका प्रधान लक्ष्य है। लेकिन ध्यान से देखें तो कहानी का काम केवल मनोरंजन करने तक ही सीमित नहीं था। उस युग में जीवन का अधिकतर ज्ञान दादी-नानी की कहानियों के माध्यम से मनोरंजक तरीके से लोगों तक पहुंचाया जाता था। पंचतंत्र, सिंहासन बतीसी, बैताल पचीसी, आदि कथाओं के माध्यम से लोकरंजक तरीके से गूढ़ संदेश भी लोगों तक पहुंचाया जाता था। हितोपदेश, रामायण, महाभारत आदि भारतीय आख्यान परम्परा के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

5.2.1 आख्यायिका और कथा

जिसे आज हम कहानी के नाम से जानते हैं, वह आख्यायिका और कथा आदि आद्य नामों से सदियों से हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। भारत में कथा और आख्यायिका की

परम्परा संस्कृत से लेकर हिन्दी प्रेमाख्यानों तक बराबर बनी रही। कहानी का प्राचीन संस्कृत नाम गल्प या आख्यायिका है। भामह ने सुंदर गद्य में रचित सरस कहानी को आख्यायिका कहा है। यह उच्छ्वासों में बटी होती थी। आख्यायिका की विशषेता इस बात में पाई जाती है कि वह स्वयं नायक द्वारा कही गई होती है जबकि कथा किसी के भी द्वारा कही जा सकती थी। प्राचीन आख्यायिका कुतूहल प्रधान होती थी या आध्यात्म विषयक। उपनिषदों और महाभारत में आध्यात्मिक रहस्यों को समझाने के लिए आख्यायिकाओं का सहारा लिया जाता था। गद्यकाव्य का दूसरा रूप है– कथा। कथा की वस्तु कल्पित होती थी जबकि आख्यायिका की ख्यात अथवा ऐतिहासिक। बाणभट्ट की कादम्बरी कथा है जबकि हर्षचरित आख्यायिका। दण्डी इस भेद को कृत्रिम मानते हैं और कथा और आख्यायिका दोनों को आख्यान के अंतर्गत समाहित करते हैं। कथा अपने मूल अर्थ में समयानुक्रम में निबद्ध घटनाओं की श्रृंखला है। सफल कथा वह है जो श्रोता की कौतूहल भावना को आरम्भ से अंत तक जाग्रत रखे। श्रोता हमेशा यह जानने को उत्सुक रहे कि फिर क्या हुआ? कथा का थोड़ा विकसित रूप वह है जिसमें घटनाओं के बीच कार्य-कारण संबंध भी अपेक्षित होता है। साथ ही कथा अतीत से वर्तमान की ओर न चलकर वर्तमान से अतीत और फिर अतीत से वर्तमान की ओर आवाजाही करने लगती है। देवकी नन्दन खत्री इस प्रकार के कथाकार और 'चंद्रकांता' इस प्रकार की कथा है। कथा का इससे भी विकसित रूप यह है, जहां घटना श्रृंखला का स्थान कार्य-व्यापार श्रृंखला ले लेती है।

5.2.2 आख्यायिका बनाम कहानी

आधुनिक युग में कहानी के नाम से जिन रचनाओं को हम जानते हैं उन्हें आरम्भ में गल्प या आख्यायिका ही कहा जाता था। किशोरी लाल गोस्वामी की रचना 'इंदुमती', जिसे सबसे पहली कहानी होने का गौरव प्राप्त है, उसे स्वयं गोस्वामी जी ने आख्यायिका कह कर प्रकाशन के लिए भेजा था और वह इसी रूप में सरस्वती में प्रकाशित भी हुई थी। श्यामसुंदर दास ने अंग्रेजी की शॉर्ट स्टोरी के लिए हिन्दी में आख्यायिका पद का ही प्रस्ताव किया था जिसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वीकार भी कर लिया था और 'सरस्वती' में आख्यायिका नाम से एक स्तम्भ भी आरम्भ किया था। इस तरह, आज हम जिसे कहानी के नाम से जानते हैं वह आख्यायिका का ही विकसित आधुनिक रूप है। परन्तु इसका सीधा सम्बन्ध प्राचीन आख्यायिका से न होकर योरोपीय शॉर्ट स्टोरी से अधिक था। आज की कहानियां अपने स्वरूप में भारतीय होकर भी संस्कार में योरोपीय ढंग की शॉर्ट स्टोरी के शिल्प से ज्यादा प्रभावित हैं।

5.2.3 आधुनिक कहानी

आधुनिक हिन्दी के आविर्भाव के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान प्राचीन कथा साहित्य को ही आधुनिक कथा साहित्य का स्रोत मानते हैं। जबकि कुछ विद्वान हिन्दी कहानी को पश्चिम की देन मानते हैं। प्राचीन कथा साहित्य को हिन्दी कहानी का स्रोत मानने वालों का मत है कि हिन्दी कहानी का सम्बन्ध बृहत् कथा तथा जातक कथाओं से है। कुछ ने चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को हिन्दी की प्रथम कहानी माना है। जबकि कुछ लोग इंशा अल्ला की रानी केतकी की कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो हिन्दी कहानी को पाश्चात्य साहित्य का परिणाम और आधुनिक युग की देन स्वीकार करते हैं। इन विद्वानों के अनुसार नए प्रकार की कहानी का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ। यह योरोपीय अमरीकी देशों में शॉर्ट स्टोरी के नाम से विकसित गद्य विधा के प्रभाव में हिन्दी में बंगाल और अंग्रेजी के रास्ते से आया। स्वयं प्रेमचंद का स्पष्ट मत है कि उपन्यासों की भांति

आख्यायिका की कला भी हमने पश्चिम से ली है। कम से कम इसका आज का विकसित रूप तो पश्चिम का है ही।

कहानी क्या होती है अथवा उसे कैसी होनी चाहिए, इस पर पश्चिम में बहुत विचार हुआ है। पश्चिम में आधुनिक कहानियों की परिभाषा चेखव, मोपांसा, तालस्ताय, डिकेंस, एलेन पो आदि कहानीकारों की कहानियों को केन्द्र में रखकर होती आई है। अतः कहानी का प्रामाणिक पारिभाषिक रूप जानने के लिए सबसे पहले कुछ अंग्रेजी विद्वानों के विचार जानना उपयुक्त होगा।

एलेन पो को शॉर्ट स्टोरी का जन्मदाता माना जाता है। एलेन पो के अनुसार, ''यह ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखा गया हो।'' हडसन के अनुसार,'' कहानी में केवल एक ही मूल भाव होता है। उस मूल भाव का विकास ताक्रिक निष्कर्षों के साथ लक्ष्य की एकनिष्ठता की स्वाभाविक गति से किया जाना चाहिए।'' एलेरी कहानी की तुलना घुड़दौड़ से करते हुए कहते हैं कि ''जिस प्रकार घुड़दौड़ का आदि और अंत महत्वपूर्ण होता है, उसी प्रकार कहानी का आदि और अंत ही विशेष महत्व का होता है। इसी तरह ह्यूबालपोल कहते हैं कि ''छोटी कहानी एक कहानी होनी चाहिए जिसमें घटनाओं दुर्घटनाओं, तीव्र कार्य-व्यापार और कुतूहल के माध्यम से चरम सीमा या संतोषजनक पर्यवसान तक ले जाने वाले अप्रत्याशित विकास का विवरण हो।''

5.3 कहानी में 'कला' का अर्थ और प्रयोजन

'कला' के अर्थ और प्रयोजन को समझने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि साहित्य अपने आप में एक कला है। मोटे तौर पर जैसे सभी कलाओं के बारे में, वैसे ही साहित्य के बारे में भी यही माना जाता है कि वह ''अपने आसपास की दुनिया से मनुष्य का संतुलन स्थापित करने का साधन है।'' पूंजीवादी समाज में संतुलन चूंकि महज एक अप्राप्य अभिकल्पना है, इसलिए कला सम्बन्धी यह 'विचार' अपने आप एक ऐसा विचार बन जाता है जो 'कला' को मनुष्य की कभी न खत्म होने वाली जरूरत में बदलकर रख देता है।

कला में थोड़ी देर के लिए यथार्थ के बंधन तोड़ कर फेंक दिए जाते हैं जिससे एक अस्थाई विमोहन पैदा होता है,जिसे कला का तात्कालिक प्रभाव कहा जाता है। यह तात्कालिक प्रभाव हमारी अनुभूति को उत्तेजित करता है। एक सच्ची कला यही करती है। वह अनुभूतियों को उत्तेजित करने से आगे नहीं जाती। कला सम्मोहित करती है। हमारा मनोरंजन करती है मगर हमारे सामाजिक विवेक को निष्कृय भी बनाती है। इसके बरअक्स सच्ची जनपक्षधर कला जहां एक तरफ हमारी अनुभूतियों को सम्मोहित करती है वहीं हमारे विवेक को जाग्रत भी करती चलती है। वह जिस यथार्थ से हमारा तादात्म्य स्थापित कराती है, उसी के विरूद्ध हमारी बुद्धि को सजग भी करती है। हमें वैसी स्थितियों के विरूद्ध निर्णय लेने के लिए प्रेरित भी करती है। प्रेमचंद ऐसी ही रचना-कला के पक्षधर रचनाकार थे। उनका स्पष्ट कथन था कि रचना वही जो हमें सुलाए नहीं हमारी चेतना को सक्रिय बनाए। प्रेमचंद साहित्य में कला के सीमित प्रयोग के समर्थक थे। वे कला को वहीं तक स्वीकार करते थे जहां तक कि वह मनुष्य के लिए उपयोगी हो। वे कहते हैं कि ''आख्यायिका का प्रधान धर्म मनोरंजन है,पर साहित्यिक मनोरंजन वह है जिससे हमारी कोमल और पवित्र भावनाओं को प्रोत्साहन मिले।'' ''अलंकारों के दुरुपयोग से साहित्य विकृत हो जाता है। जो कुछ स्वाभाविक है वही सत्य है और स्वाभाविक से

दूर होकर कला अपना आनन्द खो देती है। उसे समझने वाले थोड़े से कलाविद् ही रह जाते हैं।''

कला और मनुष्य का सम्बन्ध बहुत पुराना है। अर्नस्टफिशर के शब्दों में, ''कला अपने मूल रूप में एक जादू थी। एक वास्तविक मगर अनजानी दुनिया पर अधिकार प्राप्त करने का एक जादुई उपकरण।'' मगर '' दुनिया को बदलना ही जिसकी नियति है, उस वर्ग के लिए कला का सारभूत काम जादू करना नहीं, बल्कि प्रबुद्ध बनाना तथा कर्म की प्रेरणा देना है। लेकिन यह भी सच है कि जादू का जो अंश कला में बचा रह गया है,उसे पूरी तरह निकाल कर फेंका नहीं जा सकता। क्योंकि अपनी मूल प्रकृति के इस सूक्ष्म अवशेष के बिना कला कला नहीं रह जाती।''

हमारा समाज एक वर्ग समाज है। एक वर्ग समाज में कोई भी विचार सर्व स्वीकृत विचार नहीं हो सकता। आज भी ऐसे लेखकों की कमी नहीं है जो समाज की तुलना में व्यक्ति की निरपेक्ष आजादी की रक्षा करना कला का धर्म मानते हैं। प्रेमचंद कला को इस सीमित प्रयोजन से आगे हमारे सामाजिक विवेक को जाग्रत करने और समाज परिवर्तन की दिशा का वाहक बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि उपन्यासों और आख्यायिकाओं में अस्वाभाविक बातों के लिए गुंजाइश नहीं है। उसमें हम अपने जीवन का ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं। उसके एक-एक वाक्य और एक-एक पात्र को यथार्थ के रूप में देखना चाहते हैं। प्रेमचंद कला कला के लिए के सिद्धांत के विरोधी न थे। मगर उनका मानना था कि ''कला कला के लिए का समय वह होता है जब देश सुखी व सम्पन्न हो।'' वे आगे कहते हैं कि ''जब हम देखते हैं कि हम भांति-भांति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है,दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करूण क्रंदन सुनाई देता है तो यह कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे?''

5.4 हिन्दी कहानी में प्रेमचंद का हस्तक्षेप

प्रेमचंद जैसे महान कथाकार की दृष्टि में कहानी-कला का स्वरूप और संदर्भ बहुत व्यापक था। प्रेमचंद की कथा-दृष्टि को समझने के पहले उन साहित्यिक परिस्थितियों पर संक्षिप्त विचार कर लेना आवश्यक है जिसके अंतर्गत एक कथाकार के रूप में प्रेमचंद का प्रादुर्भाव हुआ। जिस समय में प्रेमचंद का साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ वह साहित्य की सामंती परम्परा का कालखण्ड था। भारतेंदु की सामंती राष्ट्रीयता नई पूंजीवादी राष्ट्रीयता के युग में प्रवेश कर रही थी। यह वह दौर था जब साहित्यकार की प्रवृत्ति मुख्यतः आदर्शवादी भावधारा के माध्यम से अपने को व्यक्त कर रही थी। उस युग का आदर्शवाद सामंती राष्ट्रीयता से प्रभावित था। आचार्य शुक्ल के शब्दों में, यह गद्य के तृतीय उत्थान का आरम्भिक काल था। इसके पूर्व हिन्दी में गद्य लेखन का प्रयास शुरू हो चुका था। उपन्यासों और कहानियों की रचना भी होने लगी थी। 'दुलाई वाली' (बंग महिला), 'ग्यारह वर्ष का समय' (रामचंद्र शुक्ल) और 'इंदुमती' (किशोरी लाल गोस्वामी) आदि कहानियों के प्रकाशन के साथ हिन्दी में आधुनिक कहानी का सूत्रपात हो चुका था। जय शंकर प्रसाद (आकाशदीप,प्रतिध्वनि,ग्राम आदि), राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह (कानों में कंगना), विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक (रक्षाबंधन) और पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (उसने कहा था) सरीखे कथाकार आधुनिक हिन्दी के इतिहास को आगे बढ़ाने मे लगे थे। इसी तरह उपन्यास लेखन भी अपनी दिशा में अग्रसर था। प्रेमचंद की पूर्ववर्ती कहानियों में चाहे वे तिलस्मी-जासूसी हों या सामंती प्रेम की हों या सुधारवादी, सबके नायक सामंती वर्ग के ही होते थे और उन्हीं की जीवन समस्या का साहित्य में यांत्रिक चित्रण होता था। यही

कारण है कि इतना लेखन हो चुकने के बाद भी इन प्रयासों को आचार्य शुक्ल ने अधिक महत्व इसलिए नहीं दिया कि इन लेखकों की रचनाओं में साधारण मनुष्य के जीवन के चित्रण का कोई प्रयास नहीं दिखता। इतना सारा कथा साहित्य लिखने के बाद भी बाबू जयशंकर प्रसाद को आचार्य शुक्ल ने 'भावुकता का कोश' कहकर अस्वीकृत कर दिया और पं0 चंद्रधर शर्मा उनकी निगाह मे 'संस्कृत के प्रकाण्ड प्रतिभाशाली विद्वान और हिन्दी के अनन्य आराधक' आदि ही बने रहे। शुक्ल जी ने उन्हें कथाकार की संज्ञा से विभूषित करने लायक नहीं समझा। इसी तरह विश्वम्भरनाथ कौशिक, बाबू प्रताप नारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्र कुमार और वृंदावनलाल वर्मा जैसे उपन्यासकारों तक को उन्होंने कोई बहुत महत्व नहीं दिया। आचार्य शुक्ल ने इन्हें कथाकार या उपन्यासकार के रूप में याद किया अवश्य लेकिन शुक्ल जी की निगाह में उनके कृतित्व का महत्व कोई खास न था। शुक्ल जी के ही शब्दों में कहें तो इन उपन्यासकारों का महत्व सिर्फ इतना था कि ये "उपन्यास भंडार की बहुत सुंदर पूर्ति करते जा रहे थे।'' इसके विपरीत प्रेमचंद के लिए उनके मन में अगाध सम्मान का भाव था। हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद ने ही पहली बार अपने समय के भाव और शिल्प की रूढ़ियों की संकीर्णता से साहित्य को मुक्त कर उसे अभिव्यक्ति का नया स्वर और चेतना की नयी वाणी दी। वे साहित्यकार की तटस्थता में विश्वास नहीं करते थे। प्रेमचंद के लिए उनका सम्मान उनके इन शब्दों में प्रकट हुआ है, '' प्रेमचंद जो कर गये वह तो हमारे साहित्य की एक निधि ही है।''

प्रेमचंद ने जो किया वह 'निधि' बाकी सब भंडार! आचार्य शुक्ल ने बाकी को ऐसा क्यों कहा ? इसका उत्तर स्वयं आचार्य शुक्ल के शब्दों में खोजा जा सकता है। द्वितीय उत्थान के दौर में लिखे गए सभी उपन्यासों और कहानियों को शुक्ल जी ने यह कह कर खारिज कर दिया था कि '' इनका लक्ष्य केवल घटना वैचित्र रहा ,रससंचार, भावविभूति या चरित्र-चित्रण नहीं। ये वास्तव में घटनाप्रधान कथानक या किस्से हैं जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य कोटि में नहीं आते।'' (हि. सा. 356)। तृतीय उत्थान के दौर में आचार्य शुक्ल को सिर्फ प्रेमचंद के उपन्यासों में ही वे विशेषताएँ दिखीं जिसके वे स्वयं कायल थे। प्रेमचंद के बारे में उनके शब्द हैं, ''इस तृतीय उत्थान का आरम्भ होते होते हमारे हिन्दी साहित्य के उपन्यास का पूर्ण विकसित और परिष्कृत रूप लेकर स्वर्गीय प्रेमचंद जी आए......प्रेमचंद जी के ही पात्रों में ऐसी स्वाभाविक विशेषताएँ मिलने लगीं जिन्हें सामने पाकर अधिकांश लोगों को यह भाषित हो कि कुछ इसी ढंग की विशेषता वाले व्यक्ति हमने भी कहीं न कहीं देखे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्य शुक्ल हिन्दी कथा साहित्य में सच्ची यथार्थवादी कला का विकास सिर्फ प्रेमचंद के होते देख पा रहे थे। लुभावनी भावव्यंजकता और कवित्वपूर्ण भाषा के गुंजलक तोड़कर प्रेमचंद के माध्यम से अलंकारों के बोझ से मुक्त भाषा में जो कहानियां और उपन्यास आ रहे थे, आचार्य शुक्ल वैसे ही कथात्मक गद्य की अपेक्षा करते थे।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेमचंद जिस ऐतिहासिक भूमि पर खड़े थे वहां उनके लिए अपने निकट के पूर्ववर्तियों से सीखने के लिए कुछ खास न था। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि सीखने के लिए अपने पूर्ववर्तियों से कुछ खास न होने के बावजूद प्रेमचंद ने यूरोप की कला-दृष्टि को अपना आदर्श नहीं बनाया। अपनी भारतीय जमीन से प्राप्त अनुभवों से सीखते हुए उन्होंने अपनी साहित्य-दृष्टि और कला का विकास किया। आगे के अध्यायों में हम यथास्थान इस विकास की प्रक्रिया और प्रकृति पर चर्चा करेंगे और पाएंगे कि हिन्दी में प्रेमचंद अकेले ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने जहां एक तरफ भारतीय परम्परा में आख्यायिका और कथा की पुरानी शैली से बहुत कुछ ग्रहण किया

वहीं पाश्चात्य यथार्थवादी कला को भारतीय सांस्कृतिक परिस्थितियों में भारतीय किस्म की कला-दृष्टि में ढाल कर अपनी सर्जना का मार्ग प्रशस्त किया।

5.5 कहानी के बारे में प्रेमचंद के विचार

प्रेमचंद शायद अकेले कहानीकार हैं जिसने भारतीय कथा परम्परा की आत्मा को पूरी तरह आत्मसात करते हुए पाश्चात्य शिल्प की कहानियों का हिन्दी में मार्ग प्रशस्त किया। उनकी निगाह में अगर एक ओर पश्चिम के एलेन पो, मोपांसा, चेखव, तालस्ताय, डिकेंस, अनातोल फ्रांस और गोगोल की परम्परा थी तो दूसरी तरफ उन्हें भारतीय आख्यायिका और कथा की सुदीर्घ परम्परा का भी बोध था। प्रेमचंद जिस युग में पैदा हुए थे उस युग में उन्हें पश्चिमी शिल्प की कहानियां लिखने के साथ ही साथ प्राचीन आख्यायिका की परम्परा और बोध को भी अपनी कथा परम्परा में शामिल करते हुए चलना था। इसलिए उन्होंनें सिर्फ कहानियां ही नहीं लिखीं बल्कि कहानी के बारे में भी लिखा। हिन्दी कहानी को अपनी परम्परागत आख्यायिका की भूमि पर स्थापित करते हुए उन्होंने कहा कि कहानी एक घटना है शेष सारी बातें उसी एक घटना के अंतर्गत होती हैं। प्रेमचंद कहते हैं कि कहानी एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक रंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्‌देश्य होता है। उसके चरित्र उसकी शैली तथा उसका कथा विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। वे उस कहानी को सर्वोत्तम मानते हैं जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो। उनके अनुसार, कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है। प्राचीन आख्यायिका से आज की कहानी की तुलना करते हुए प्रेमचंद कहते हैं कि प्राचीन आख्यायिका कौतूहल प्रधान होती थी। वर्तमान आख्यायिका मनोविश्लेषण और जीवन के यथार्थ के स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम अनुभूतियों की मात्रा ज्यादा होती है। इतना ही नहीं, अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अतिरंजित हो कहानियां बन जाती हैं। प्रेमचंद के अनुसार कहानी या शॉर्ट स्टोरी के लिए पंद्रह या बीस मिनट ही काफी है। हम ऐसी कहानी चाहते हैं कि वह थोड़े से थोड़े शब्दों में कही जाय। उसमें एक वाक्य एक शब्द भी अनावश्यक न आने पाए। उसका पहला ही वाक्य मन को आकर्षित कर ले। उसमें कुछ चटपटापन हो,ताजगी हो और विकास हो। इसके साथ ही कुछ तत्व भी हो। तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले हो जाय, मानसिक तृप्ति नहीं होती। उनके अनुसार सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। वे कहते थे कि कहानी की भाषा सरल और सुबोध होनी चाहिए। सरलता में सरलता पैदा कीजिए, यही कमाल है।

5.6 प्रेमचंद की कहानी-कला

विषय-वस्तु, कला और शिल्प के लिहाज से प्रेमचंद की कहानियों पर विचार करना थोड़ा मुश्किल इसलिए है कि वे अपने पूर्ववर्तियों और समकालीनों की तरह किसी एक शिल्प और एक ही प्रकार के विषय के दायरे में रहकर लिखने वाले कथाकार नहीं थे। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में विकास तथा परिवर्तन का एक विशाल रास्ता तय किया था। जिस तरह जीवन के अनेक स्तर और अनुभव के अनेक आयाम होते हैं,उसी तरह प्रेमचंद की कहानियां भी जीवन के विभिन्न स्तरों और आयामों को समेटती हुई हमें नाना प्रकार के अनुभवों में ले जाती हैं। विषय और घटना रूपों के अनुसार उनकी कहानियों के शिल्प भी बदलते रहते हैं। 'पंच परमेश्वर' से लेकर 'कफन' तक की कहानियों को किसी एक ही मापदण्ड से विश्लेषित नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह कि प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी के पूर्ववर्ती ढंग को लगभग अस्वीकार करते हुए हिन्दी कहानी को नितांत मौलिक

तरीके से बदल दिया। उनसे पूर्व की कहानियों और उपन्यासों में प्रायः मानवेतर विषयों की प्रधानता होती थी अथवा समाज के उच्चकुलीन तबकों या सामंती शासकों का जीवन आचरण ही कहानी का विषय हुआ करता था। प्रेमचंद नें सबसे पहले विशिष्टों के स्थान पर आम आदमी को प्रतिष्ठित किया। आम आदमी के सुख-दुख और जीवन चर्या को कहानी का केन्द्रीय विषय बनाया। इसलिए स्वाभाविक तौर पर विषय के अनुरूप उनकी भाषा और शिल्प में भी एक तरह का यथार्थवादी प्रयोग देखने को मिलता है जो उनके पूर्व की कहानियों में न था। उनकी कहानियों के विषय वैविध्य से भरे हुए हैं। इसलिए भाषा, शिल्प और विषय के लिहाज से उनकी कहानियों में किसी एक प्रवृत्ति को रेखांकित करना कठिन है।

प्रेमचंद ने तीन सौ से अधिक कहानियां लिखी हैं। ये कहानियां लम्बे काल विस्तार को छेकती हैं । तमाम विविधताओं के बावजूद यदि प्रेमचंद की कहानियों की विशेषता की बात करनी हो तो उन्हें ग्राम्य जीवन का चितेरा कथाकार कहा जाएगा। उत्तर भारतीय किसान जीवन का ऐसा प्रामाणिक रचनाकार दूसरा नहीं हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि '' अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार व्यवहार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आंकाक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आप को नहीं मिल सकता....... समाज को उनसे अधिक विश्वसनीयता से दिखा पाने वाले परिदर्शक को हिन्दी उर्दू की दुनिया नहीं जानती।'' प्रेमचंद के बारे में आचार्य द्विवेदी का मानना है कि उन्होंने अतीत का गौरव राग नहीं गाया। न ही भविष्य की हैरतअंग्रेज कल्पना की। वे ईमानदारी से अपने वर्तमान काल की तमाम अवस्था का विश्लेषण करते रहे।

5.6.1 वर्ण्य विषय

आम तौर पर प्रेमचंद को गांव के गरीब किसान समुदाय और मजदूरों का कथाकार माना जाता है। लेकिन उन्हें सिर्फ इसी तबके का कथाकार कहना ठीक नहीं जान पड़ता। क्योंकि तब हमें 'बूढ़ी काकी', 'बड़े भाई साहब, 'बड़े घर की बेटी', 'ईदगाह', 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा ऐसी दर्जनों कहानियों को प्रेमचंद की महत्वपूर्ण कहानियों की सूची से बाहर करना पड़ेगा। कहने का अर्थ यह है कि कृषक समुदाय का व्यापक जीवन प्रेमचंद के फोकस में सबसे अधिक जगह अवश्य घेरता था लेकिन किसी भी समर्थ और सजग कथाकार की तरह उनकी निगाह अपने आस-पास के जीवन और समाज पर भी बराबर बनी रही। डॉ नगेन्द्र ने लिखा है, ''प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है। किन्तु उनकी दृष्टि समाज से उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रही है। उनके पात्र प्रायः वर्ग-प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं। घटनाओं के विकास के साथ-साथ उनकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का भी विकास होता चलता है। प्रेमचंद एक सच्चे समाज सुधारक और क्रांतिकारी लेखक थे। उन्होनें अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर दहेज ,बेमेल विवाह आदि का सबल विरोध किया है। स्त्रियों को केन्द्र में रखकर उन्होंने बहुत सारी कहानियां लिखी हैं। नारी के प्रति उनके मन में स्वाभाविक श्रद्धा थी। समाज में उपेक्षिता, अपमानिता और पतिता स्त्रियों के प्रति उनका हृदय सहानुभूति से परिपूर्ण रहा है।'' डॉ विजय मोहन सिंह के अनुसार प्रेमचंद को केवल कृषक मजदूर और ग्रामीण जीवन का कथाकार कहना उनके वृत्त को सीमित करके देखना है........वे (प्रेमचंद) अपनी कहानियों के माध्यम से पूरी जिंदगी को समझना चाहते थे, उसके हर रंग हर रूप और छवि को.........इसीलिए उनकी कहानियों में जितने किसान हैं, उतने ही मजदूर, जमींदार, जागीरदार, बाबू, भिखारी, विधवा, परित्यक्ता स्त्रियां, मातृहीन बालक, किशोर, बूढ़ी स्त्रियां और बूढ़े पुरुष।'' उदाहरण के लिए– 'दो भाई', 'बैर का अंत,' 'गृह-दाह' और 'अलग्योझा' पारिवारिक समस्या पर केन्द्रित कहानियां हैं। इसी तरह 'मृतक भोज' में कुरीतियों की

धज्जी उड़ायी गयी है। उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचंद को किसी एक ढांचे या सांचे का कथाकार कहना ठीक नहीं है। बावजूद इसके, यह कहना गैर मुनासिब न होगा कि चूंकि उनके सभी पात्रों की सामाजिक अथवा आर्थिक पृष्ठभूमि कमोवेश ग्रामीण जीवन परिवेश से ही सम्बन्धित होती थी और कथा के सारे अनुभव देहाती जीवन के दायरे में घटते थे इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर प्रेमचंद को कृषक जीवन का कथाकार कहना कहीं से गलत नहीं प्रतीत होता है।

5.6.2 वर्णन-कला और चरित्र-चित्रण

वर्णन-कला में प्रेमचंद बेजोड़ हैं। हर कहानी एक नए तरह से आरम्भ होती है। उनके यहां शिल्प का दुहराव भी नहीं है। 'गुल्ली डंडा' कहानी एक निबंध की तरह शुरू होती है जबकि 'मुक्तिमार्ग' की शुरुआत ही व्यंग्य विदग्ध वाक्यों से होती है। ग्रामीण ठेठपन प्रेमचंद की कहानियों में कथा-रस पैदा करता है। भीतर-भीतर बहता हुआ किस्सागोई का रस प्रेमचंद की कहानियों को पठनीय तो बनाता ही है अपनी कथा-परम्परा की भी याद दिलाता है। एक उदाहरण देखें- ''किसी गांव में एक कुर्मी किसान रहता था। सीधा सादा गरीब आदमी था। अपने काम से काम.........एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया।'' 'सवा सेर गेहूं' कहानी का यह पहला ही वाक्य दादी-नानी के किस्सों कहानियों की याद दिला देता है। प्रेमचंद की वर्णन-कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जिस चीज का भी वर्णन करते हैं पाठक को बड़ी सहजता से उस चीज को आत्मा में उतार देते हैं। प्रेमचंद शायद अकेले कथाकार हैं जिन्होनें परम्परागत ग्रामीण किस्सों कहानियों से कहानी लिखने का गुर सीखा। खास बात यह कि किस्सागोई का रस लिए हुए होकर भी इनकी कहानियों में कहीं भी अनावश्यक स्फीति नहीं है। व्यंग्य की बारीक धार उनके यहां हर जगह मौजूद रहती है। मुक्तिमार्ग कहानी का यह पहला ही वाक्य देखने लायक है- '' सिपाही को अपने लाल पगड़ी पर सुंदरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देख कर होता है।'' डॉ रामविलास शर्मा कहते हैं, '' यहां प्रेमचंद ने न जाने कितनों को हलाल कर दिया है।''

ऐसा लगता है कि प्रेमचंद कहानी लिखने की जगह कहानी सुनाते हैं। अक्सर लच्छेदार जुबान में। प्रेमचंद की कहानियों में फुरसत से सुनने का भाव मिलता है। जीवन के अनुभवों पर टीका टिप्पणी, व्यंग्य अनूठी उपमाएं और बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य के द्वारा पाठक को गुदगुदाते भी रहते हैं।

प्रेमचंद के यहां परम्परागत कहानी में पाये जाने वाले कुतूहल के स्थान पर चरित्र-चित्रण को प्रधानता मिलती है। उनके यहां चरित्र-चित्रण की बारीकियों में पाठक का मन ज्यादा रमता है। प्रेमचंद सनसनीखेज घटनाओं से पाठक को चौंकाने का काम नहीं करते। उदाहरण के लिए मुक्तिमार्ग में झींगुर के खेत में आग लगने की सनसनीखेज घटना घटती जरूर है लेकिन यह कहानी का मुख्य विषय नहीं है। कहानी के केन्द्र में तो बुद्धू और झींगुर का चरित्र और जीवन है। डॉ शर्मा ने लिखा है कि ''प्रेमचंद के चरित्र-चित्रण की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि थोड़ी देर के सम्पर्क के बाद ही उनके पात्र हमें बहुत दिनों से परिचित जैसे जान पड़ने लगते हैं और कहानी खत्म कर देने के बाद भी बहुत दिनों तक याद रहते हैं।'' प्रेमचंद की यह शैली निरंतर ठोस और यथार्थवादी होती चली गई है। 'कफन' पूस की रात और सद्गति जैसी कहानियों में शिल्प गठन अधिक ठोस और विचारोन्मुख होता दिखता है। प्रेमचंद में निरंतर विकास की प्रवृत्ति उनके लेखन को विशिष्ट बनाता है।

5.6.3 भाषा-शिल्प और सौंदर्य चेतना

प्रेमचंद के रचना-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है। उनकी भाषा व्यंजक, सरस व सरल है। वे कहते भी हैं कि सरलता में सरलंता पैदा कीजिए, यही कमाल है। प्रेमचंद की कहानियों में यह कमाल जगह जगह देखने को मिलता है। सरल व सहज होते हुए भी उनकी भाषा काव्यमयी, प्रवाहमयी व पारदर्शी है। बहते पानी की तरह एक दम स्वच्छ व निर्मल । यह कमाल उन्होनें अनुभवों की गहराई से हासिल किया है। वास्तव में यह अनुभवों की गहराई से उपजी हुई हार्दिक भाषा है जो उनके शिल्प को मनोरंजक और सरस बनाती है।

प्रेमचंद का कथा-शिल्प किसी एक ही सांचे में ढला न होकर विविधता से भरा हुआ है। उनके यहां कहानी कहने की अनेक प्रविधियां हैं। जैसे- किस्सागोई की शैली। निबंध की शैली, एकालाप की शैली, संवाद की शैली और क्रियाकलाप की शैली। प्रेमचंद विषय-वस्तु और उद्देश्य के अनुरूप शैली का चुनाव करते हैं। कहानियों में अक्सर उपस्थित होकर वे स्वयं कभी कथा-सूत्र को आगे बढ़ाते हैं और कभी कहानी के तात्पर्य को स्पष्ट करते हैं। जैसे कफन कहानी में घीसू और माधव के कामचोर होने का कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''जिस समाज में रात दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले वे लोग, जो किसानो की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं जादा सम्पन्न थे, वहां इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।''

प्रेमचंद का अनुभव-संसार निरंतर विकसित और परिवर्तित होता रहा है। यही कारण है कि उनकी एक धारणा नए अनुभव के प्रकाश में नया रूप धारण कर लेती है और अगली कहानी में वह नए अनुभव को व्यक्त करती है। उदाहरण के लिए 'पंचपरमेश्वर' कहानी के समय तक प्रेमचंद को पंचायत में आस्था थी। लेकिन बाद के अनुभवों ने उनकी इस आस्था को दरका दिया इसलिए 'मृतक भोज' कहानी तक आते-आते पंचायत के प्रति उनकी आस्था बदल जाती है। शिल्प की दृष्टि से देखें तो प्रेमचंद की पूर्ववर्ती और परवर्ती कहानियों में काफी अंतर है। 'पंचपरमेश्वर' से चलकर 'कफन' तक आते-आते उनकी कहानियों का शिल्प क्रमशः आदर्शवाद से यथार्थवादी होता गया है। पूर्ववर्ती कहानियों में घटना-बहुलता है। उनमें आकस्मिक घटनाएं ज्यादा हैं। इन घटनाओं के बिना न वे पात्रों की मनोवृत्तियों को गहराई से व्यक्त कर पाते हैं न चरित्रों का विकास हो पाता है और न कहानी का उद्देश्य ही स्पष्ट हो पाता है। परन्तु धीरे-धीरे घटनात्मकता का स्थान मानवीय अंतःवृत्तियों का अंकन ले लेता है। मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन उनकी कहानियों की विशेषता रही है। प्रेमचंद के यहां चरित्रों को केवल अच्छा अथवा केवल बुरा चित्रित नहीं किया जाता। वे मानते थे कि बुरा आदमी भी बिलकुल ही बुरा नहीं होता। उसमें भी कहीं-न-कहीं देवता छिपा होता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस मनोवैज्ञानिक सत्य को दिखा देना ही आख्यायिका का काम है। प्रेमचंद कहानियों को जीवन के निकटतर अनुभवों को व्यक्त करने की सबसे प्रामाणिक विधा मानते थे।

प्रेमचंद की अनन्यता इस बात में है कि उन्होंने कला में नए सौंदर्यबोध का प्रस्ताव किया और कहा कि हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता का पोषण करती थी। प्रेमचंद कहते हैं कि कला को सामंती विलासिता की कसौटी से बाहर निकालकर गांवों की गरीब बस्तियों और झोपड़ों तक ले जाना होगा। प्रेमचंद सुंदर कपोलों और रंगे होठों वाली स्त्री में सौंदर्य देखने के स्थान पर मुरझाए होठों और कुम्हलाए गालों में सौंदर्य देखने का प्रस्ताव करते हुए कहते हैं कि जो केवल बाह्य आकार और रूप पर मुग्ध हैं वे स्थूल दृष्टि रखने वाले हैं। वे कहते हैं कि ऐसी संघर्ष

शील स्त्रियों का हृदय सुंदर है। जहां त्याग है, श्रद्धा है, कष्ट और सहिष्णुता है वहीं सौंदर्य है। सौंदर्य रूप में नहीं, इन मानवीय गुणों में है।

5.7 प्रेमचंद की कलात्मक उपलब्धियां

प्रेमचंद का समूचा लेखन हिन्दी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। वे हिन्दी साहित्य के सच्चे अर्थों में मार्गदर्शक कथाकार थे। यह प्रेमचंद ही थे जिन्होंने सबसे पहले साधारण किसान मजदूर पर कलम चलाई और सौंदर्य के प्रतिमानों को बदल दिया। प्रेमचंद के पूर्व के रचनाकारों ने महलों में रहने वालों की विलासिता और उनके राग-विराग को रचना का विषय बनाया। लेकिन प्रेमचंद ने गरीबों के स्वेदकणों को अपनी रचना में स्थान दिया। प्रेमचंद को अपने अग्रणी रचनाकारों के पिटे पिटाए रास्तों पर चलना पसंद नहीं था। एक युग द्रष्टा की तरह उन्होंने अपनी मौलिक दृष्टि का उपयोग किया। अपनी कलम के माध्यम से प्रेमचंद ने उस मनुष्य का साथ दिया जो मूक और असहाय था। प्रेमचंद ने परतंत्र भारत की जनता में आजादी का स्वप्न जाग्रत किया और संघर्ष की प्रेरणा पैदा की।

समाजिक मंगल की कामना प्रेमचंद के लेखन का उद्देश्य था। प्रेमचंद नें भारतीय गांवों की जीवन-स्थितियों को जिस विश्वसनीयता से प्रस्तुत किया वैसा उनसे पूर्व किसी ने नहीं किया था। आज भी उनके जैसा प्रामाणिक और विश्वसनीय कथाकार कोई नहीं है। उत्तर भारत के गांवों के बारे में प्रामाणिक जानकारी के लिए प्रेमचंद की रचनाएं आज भी एक दस्तावेज हैं। वे आस्था के साहित्यकार थे और मानवता के उत्कर्ष में उनका गहरा विश्वास था।

5.8 सारांश

यहां आपने एम.ए.हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम ''प्रेमचंद की कहानियाँ'' के दूसरे खण्ड की पहली इकाई का अध्ययन किया है। इस इकाई में प्रेमचंद की कहानी-कला से सम्बन्धित जिन विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है उनका सारांश निम्न प्रकार है–

1. भारतीय आख्यान परम्परा बहुत पुरानी है। आख्यायिका, कथा, आदि अनेक नामों से कथा कहने की परम्परा पहले से चली आ रही थी। प्रेमचंद ने लम्बे काल से चली आ रही भारतीय कथा शैली को न अपनाकर पश्चिम की कहानी-शैली के अनुरूप अपनी कहानी का वस्तु और शिल्प निर्मित किया, किन्तु भारतीय कथापरम्परा के मूल स्वभाव को भी बचाए रखा।

2. प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को एक नया प्रस्थान दिया। उनके पूर्व में कथा साहित्य सम्भ्रांत वर्ग के जीवन के कार्यकलापों का ही चित्रण करने तक सीमित था जबकि प्रेमचंद ने कहानी को गांव की गरीब जनता के सुख-दुख, राग-द्वेष के चित्रण का माध्यम बनाया।

3. प्रेमचंद ने शार्ट स्टोरी की कला को एक ऊंचाई प्रदान की। शर्टस्टोरी के बारे में कहा गया है कि ''यह ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके।'' प्रेमचंद की कहानियों में शार्टस्टोरी की सभी विशेषताएं मौजूद हैं।

4. प्रेमचंद के रचना शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है। उनकी भाषा

व्यंजक, सरस व सरल है। प्रेमचंद का कथा शिल्प किसी एक ही सांचे में ढला न होकर विविधता से भरा हुआ है। उनके यहां कहानी कहने की अनेक प्रविधियां हैं।

5. प्रेमचंद के यहां परम्परागत कहानी में पाये जाने वाले कुतूहल के स्थान पर चरित्र-चित्रण को प्रधानता दी गई है। उनके यहां चरित्र-चित्रण की बारीकियों में पाठक का मन ज्यादा रमता है। प्रेमचंद सनसनीखेज घटनाओं से पाठक को चौंकाने का काम नहीं करते।

6. यह भी जाना कि प्रेमचंद शिल्प के प्रति आग्रही कथाकार न थे।

5.9 अभ्यास

1. एक कथाकार के रूप में प्रेमचंद का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य स्पष्ट कीजिए।

2. प्रेमचंद ने कहानी के परम्परागत रूप में किस तरह का हस्तक्षेप किया, स्पष्ट कीजिए

3. प्रेमचंद की कहानी-कला के मूल तत्वों का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत कीजिए।

4. हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचंद का महत्व बताइए।

5. प्रेमचंद के वर्णन-शिल्प और चरित्र-चित्रण के बारे में आप क्या कहना चाहते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 प्रेमचन्द की कहानियाँ और हिन्दी आलोचना

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कहानीकार प्रेमचन्द

6.2.1 नवाब राय के रूप में प्रेमचन्द के कहानी लेखन की शुरूआत

6.2.2 कहानीकार प्रेमचन्द का उर्दू से हिन्दी में आगमन

6.2.3 सरकारी मुलाजमत के दौरान लिखी प्रेमचन्द की कहानियाँ

6.2.4 सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के उपरांत प्रेमचन्द की कहानियाँ

6.2.5 प्रेमचन्द के लेखन के अंतिम दौर की कहानियाँ

6.3 प्रेमचन्द की कहानी आलोचकों की जुबानी

6.3.1 प्रेमचन्द विवादों के घेरे में

6.3.2 प्रेमचन्द की कहानियाँ और रामविलास शर्मा

6.3.3 प्रेमचन्द और परवर्ती आलोचना

6.4 सारांश

6.5 अभ्यास

6.0 उद्देश्य

'प्रेमचन्द की कहानियाँ' पाठ्यक्रम की छठी इकाई 'प्रेमचन्द की कहानी और हिन्दी आलोचना' आपके सामने है। प्रेमचन्द हिन्दी के कथा सम्राट के रूप में जाने जाते हैं। नवाब राय के नाम से अपने कहानी लेखन की शुरुआत कर प्रेमचन्द ने लगभग 300 कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों के वैविध्य को देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपने समय को अपनी कहानियों में बखूबी रूपायित किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द हिन्दी आलोचना के केन्द्र में भी रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रेमचन्द की कहानियों से रूबरू होने के साथ-साथ हिन्दी आलोचना जगत् में उनकी कहानियों को लेकर होने वाली चर्चाओं और उस बहस-मुबाहसे का भी आनन्द उठा पाएंगे/पाएंगी जिसने हिन्दी जगत् को सबसे ज्यादा कंपित किया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- प्रेमचंद की कहानियों के बारे में विहंगम रूप से दृष्टिपात कर पाएँगे/पाएंगी;।
- प्रेमचन्द के कहानी लेखन संबन्धी उनके विचार जान पाएँगे/पाएंगी;
- प्रेमचन्द की कहानियों को लेकर हिन्दी के आरम्भिक आलोचकों के बीच होने वाली चर्चाओं और यदा-कदा प्रेमचन्द द्वारा दिए गए उनके उत्तर से साक्षात्कार कर पाएंगे/पाएंगी;
- हिन्दी की परवर्ती आलोचना के तारतम्य में प्रेमचन्द की कहानी को देख पाएँगे/पाएंगी।

6.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते ही हैं कि प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार हैं। जिस समय

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जब प्रेमचन्द का आगमन हुआ उस समय तक हिन्दी कहानी अपने आधुनिक अर्थ में 'घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित' वाली स्थिति में शैशवावस्था में थी और अपना सर्वमान्य रूप ग्रहण नहीं कर पाई थी। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में मुद्रित हिन्दी कथाओं के लिए कहानी', उपख्यान', वृतान्त आदि पद प्रचलित थे। किस्सा, दास्तान और अफसाना जैसे शब्दों का प्रयोग भी इस काल में हिन्दी-उर्दू में प्रयुक्त होने लगे थे।संस्कृत साहित्य में कहानी अपने अतिप्राचीन रूप कथा के रूप में प्रयुक्त होती थी। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार 'कथा' शब्द ही अपभ्रंश में कहा का रूप ग्रहण कर अवधी, भोजपुरी आदि भाषाओं में कहनी, कहानी आदि पदों में बदल गया है। हिन्दी में यह शब्द वस्तुतः अवधी, भोजपुरी आदि से ही आया है। सम्प्रति हिन्दी आलोचना में कहानी पद उस गद्यविधा के लिए अपनाया जा चुका है जिसे अंग्रेजी में शॉर्ट स्टोरी के नाम से जाना जाता है और जो हिन्दी में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अस्तित्व में आयी। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार शॅार्ट स्टोरी, जिसे हम हिन्दी में 'छोटी कहानी' कहते हैं, एक प्रकार की ऐसी गद्य कथा है जो सामान्यतः नॉवेल (उपन्यास) और लघु उपन्यास की तुलना में अधिक सुसंबद्ध और घनीभूत होती है। छोटी कहानी के रूप में कथा लिखने की जिस नयी प्रविधि का जन्म यूरोप और युनाइटेड स्टेट्स में उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ वह अपने चरित्र में बिलकुल नया था। यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि हिन्दी लेखकों को कहानी लिखने की प्रेरणा भले ही अंग्रेजी से प्राप्त हुई हो पर उनके सामने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी की कथा-आख्यान परंपरा का विशाल भंडार भी था। हिन्दी में उन्होंने आख्यायिका नाम से इस तरह की रचनाएँ लिखनी आरम्भ की थीं। 'सरस्वती' पत्रिका के पहले अंक से ही 'आख्यायिका' नाम से छोटी कहानियों का प्रकाशन आरम्भ हो गया था। सम्भवतः इसी अंक में ही संपादन मंडल में से एक बाबू श्यामसुन्दर दास ने अंग्रेजी के शॉर्ट स्टोरी के लिए हिन्दी में 'आख्यायिका' शब्द का प्रयोग किया था। बाद में चलकर नवाब राय प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के लिए कहानी पद का प्रयोग किया और यहीं से आधुनिक कहानी अपने अस्तित्व में आ गई।1907 से प्रेमचन्द ने उर्दू से अपने कहानी-लेखन की शुरुआत की और 1915 में हिन्दी में आगमन के बाद से ही उनकी कहानी-कला में उत्तरोत्तर निखार आता गया।1926 में प्रकाशित 'प्रेम द्वादशी' की भूमिका में उन्होंने लिखा था हम पराधीन है, लेकिन हमारी सभ्यता पाश्चात्य सभ्यता से कहीं ऊँची है। यथार्थ पर निगाह रखनेवाला योरप हम आदर्शवादियों से जीवन-संग्राम में बाजी भले ही ले जाय; पर हम अपने परम्परागत संस्कारों का आधार नहीं त्याग सकते। साहित्य में भी हमें अपनी आत्मा की रक्षा करनी ही होगी। हमने उपन्यास और गल्प का कलेवर योरप से लिया है, लेकिन हमें इसका प्रयत्न करना होगा कि उस कलेवर में भारतीय आत्मा सुरक्षित रहे। प्रेमचन्द आद्यंत अपनी इस भावना पर टिके हुए दिखाई पड़ते हैं।1907 से लेकर 1936 तक प्रेमचन्द ने 300 के लगभग कहानियाँ लिखीं और एक प्रकार से उस समय की जितनी घटनाएँ परिघटनाएँ थी, सबका चित्रण अपनी कहानियों में बेबाक तरीके से किया। यही कारण है कि वे हिन्दी आलोचना के केन्द्र में भी रहे। यद्यपि हिन्दी के आलोचकों ने उन्हें कथा-सम्राट की भी संज्ञा से विभूषित किया पर उस काल में प्रेमचन्द विवादों में भी पड़ गये। उनके समकालीन कुछ आलोचकों ने उनपर अंग्रेजी की कथा को चुराने तक का आरोप लगा दिया। प्रेमचन्द पर उनकी कहानियों को लेकर कभी ब्राह्मण विरोधी होने का आरोप लगा तो कभी भारतीय समाज के अत्यंत गर्हित जीवन को रूपायित करने का। हाल के वर्षों में प्रेमचन्द की कहानियों पर दलित-विरोधी होने का भी आरोप लगाया गया है। इस प्रकार आप देखेंगे कि प्रेमचन्द न केवल कहानी-लेखन के क्षेत्र में अव्वल ही रहे हैं बल्कि हिन्दी आलोचना संसार के केन्द्र बिंदु भी रहे हैं। इससे पहले कि हम प्रेमचन्द की कहानी और हिन्दी आलोचना के बारे में विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करें, यह गैर वाजिब न होगा कि उनकी कहानियों को एक सरसरी निगाह से देख लिया जाए। आइये अब जरा उनकी कहानियों का रसास्वादन लें।

6.2 कहानीकार प्रेमचन्द

6.2.1 नवाब राय के रूप में प्रेमचन्द के कहानी-लेखन की शुरुआत

जैसा कि अब आप जान ही चुके हैं कि प्रेमचन्द ने अपने कहानी-लेखन की शुरुआत नवाब राय के नाम से उर्दू में की थी। वैसा तो उनका मूल नाम धनपत राय था और इसी नाम से वे सरकारी नौकरी भी करते थे पर अंग्रेजों की नजर से बचे रहने के लिए उन्होंने अपने पुकारू नाम नवाब राय के नाम से कहानी लेखन प्रारम्भ किया। इसी नाम से उनकी प्रथम कहानी 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' दयाराम निगम के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'जमाना' में अप्रैल, 1908 में प्रकाशित हुई थी। इसी वर्ष उनका प्रथम कहानी संग्रह 'सोजे वतन' जमाना प्रेस कानपुर से प्रकाशित हुआ, जिसमें 'इश्के दुनिया व हुब्बे वतन' के अतिरिक्त 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'यही मेरा वतन है', 'शेख मखमूर', और 'सिले-ए-मातम' नामक कहानियाँ संग्रहीत थीं। इसके दीवाचा में नवाब राय ने लिखा था हरेक कौम का इल्म-ओ-अदब अपने जमाने की सच्ची तस्वीर होता है। जो ख़यालात क़ौम के दिमागों को मुतहर्रिक (सक्रिय) करते हैं और जो ज़ज्बात क़ौम के दिलों में गूँजते हैं, वो नज़्म और नस्त (पद्य-गद्य) सफ़ों में ऐसी सफाई से नजर आते हैं, जैसे आईने में सूरत।.......अब हिन्दुस्तान के क़ौमी ख़याल ने बलोगियत (बालिग़-पन) के ज़ीने पर एक क़दम और बढ़ाया है और हुब्बे वतन के जज़्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं। क्यूँकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता ये चन्द कहानियाँ इसी असर की आग़ाज हैं और यक़ीन है कि जूँ-जूँ हमारे ख़याल वसीह (विस्तृत) होते जाएँगे, इसी रंग के लिटरेचर को रोज़-अफ़्जों (प्रतिदिन बढ़ना) फ़रोग़ (उन्नत) होता जाएगा। हमारे मुल्क़ को ऐसी किताबों की अशद (सख्त) ज़रूरत है, जो नई नस्ल के ज़िगर पर हुब्बे-वतन ;देश प्रेम की अज़मत (महिमा) का नक्शा जमाए। इस भूमिका के माध्यम से नवाब राय की मंशा स्वतः स्पष्ट हो जाती है और यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उभरी उग्र राट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य मे 'सोजे वतन' की कहानियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। इस संग्रह की केवल एक कहानी शसिल-ए-मातम को छोड़कर बाकी सभी कहानियों में देशप्रेम का भाव व्यंजित होता है जो औपनिवेशिक शासन में एक सरकारी मुलाजिम के लिए राष्ट्रदोह से कम न था। यद्यपि नवाब राय ने अपने देशप्रेम को प्रच्छन्न रूप से व्यक्त करने की सावधानी बरती थी, पर किसी सरकारी नौकर में देशप्रेम का भाव हो ,यह औपनिवेशिक शासन के लिए सहज न था। यह धनपत राय, नवाब राय और बाद में प्रेमचन्द की व्यवहारिकता और संयोग ही था कि उनकी नौकरी ही नहीं बरकरार रही, बल्कि वे जेल की सजा से भी बच गये। पर इस कृत्य के लिए नवाब राय को औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा तलब भी किया गया था और सोजे-वतन की जब्ती के आदेश के साथ-साथ उनके लेखन पर भी पाबन्दी लगा दी गयी थी। पर नवाब राय भी कहाँ मानने वाले थे। एक बार फिर से उन्होंने अपना नाम बदला और इस बार उस प्रेमचन्द का जन्म हुआ जिसने कथा साहित्य के क्षेत्र में एकछत्र राज किया। इस नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' 1910 में 'जमाना' में प्रकाशित हुई। यह प्रेमचन्द की पहली कहानी है जो हिन्दी-उर्दू कहानी को कथ्य और संरचना की दृष्टि से एक ऊँचाई पर ले जाती है। इसी वर्ष प्रेमचन्द की 'अगनकुंड', 'सैर दरवेश', 'बेगजे मुहसिन', 'रानी सारन्धा' आदि कहानियाँ 'जमाना' और 'अदीब' नामक उर्दू पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।1911 से 1920 के बीच प्रेमचन्द की लगभग 78 कहानियाँ उर्दू और हिन्दी की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं थीं। इनमें 'राजा हरदौल', 'आल्हा', 'कैफरे-कर्दार', 'नमक का दारोगा', 'ईश्वरीय न्याय', 'सज्जनता का दंड', 'पंच परमेश्वर', 'मनावन', 'तिरिया चरित्तर', 'मरहम', 'धर्म का पुतला', 'दो भाई', दुर्गा का मंदिर', 'बैंक का दिवाला','बूढ़ी

काकी', 'विध्वंस आदि कहानियों का विशेष स्थान है। ये कहानियाँ अधिकतर ग्रामीण जीवन के पारिवारिक संबंधों, मूल्य बोध और आदर्श को प्रस्तुत करती हैं। इस काल में प्रेमचन्द ने ऐसी ही कहानियाँ लिखीं जिनके माध्यम से उन्होंने जन-मानस की उन भावनाओं को जागृत करने का प्रयास किया, जो देश को औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त करने के लिए जरूरी था। देश-प्रेम की परोक्ष अभिव्यक्ति वाली इन कहानियों के बीच प्रेमचन्द ने 'वियोग और विलाप' नाम की कहानी लिखी, जिसमें पहली बार प्रेमचन्द ने बिना किसी लाग लपेट के स्वाधीनता की लड़ाई को चित्रित किया।

6.2.2 कहानीकार प्रेमचन्द का उर्दू से हिन्दी में आगमन

प्रेमचन्द के कहानी-लेखन के इतिहास में दिसम्बर 1915 इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसी माह की सरस्वती पत्रिका में हिन्दी भाषा में उनकी पहली कहानी 'सौत' प्रकाशित हुई। इसके पहले तक वे केवल उर्दू में कहानियाँ लिखते थे। 1915 तक प्रेमचन्द की लगभग तीन दर्जन उर्दू कहानियाँ और दो कहानी संग्रह 'प्रेम पचीसी' और 'सहरे दरवेश' प्रकाशित हो चुके थे, पर शुद्ध हिन्दी पाठकों के लिए वे उस समय तक लगभग अपरिचित ही थे, यहाँ तक की उनकी कहानियों के हिन्दी रूपांतर भी अब तक हिन्दी समाज के समक्ष नहीं आए थे। इस तरह 1915 ई. तक प्रेमचन्द उर्दू साहित्य में कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बना चुके थे। पर उर्दू साहित्य में वे अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं थे। उर्दू में पाठकों की स्थिति तो असंतोषजनक थी ही, उर्दू आलोचकों ने भी उन्हें कदाचित अपेक्षित सम्मान नहीं दिया था। प्रेमचन्द ने 1 सितम्बर, 1915 को अपने दोस्त और जमाना पत्रिका के संपादक मुंशी दयानारायन निगम के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था, ''उर्दू में अब गुजर नहीं है।........उर्दूनवीसी में किस हिन्दू को फैज हुआ जो मुझे हो जाएगा।'' इसके बाद 1915 में ही अपनी 'सौत' शीर्षक कहानी से वे हिन्दी में आए और उसके बाद उनकी कहानियाँ हिन्दी-उर्दू दोनों में साथ-साथ प्रकाशित होने लगीं।

यह प्रेमचन्द का हिन्दी में पदार्पण था, जो 1936 तक निर्बाध गति से चलता रहा। वर्ष 1916 में उन्होंने 'शंखनाद' और 'दो भाई' नामक संयुक्त परिवार की कथा कहने वाली दो कहानियाँ लिखी। 1916-20 की अवधि में प्रेमचन्द ने कतिपय प्रेम-केन्द्रित कहानियाँ भी लिखीं। इस काल की उनकी 'धोखा', 'गैरत की कटार', 'राजपूत की बेटी' आदि कहानियों का केन्द्रीय कथ्य प्रेम ही है। इस काल में प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में ब्राहम्णवादी कर्मकांड की खूब खबर ली है। 1920 ई. में लिखी उनकी कहानी 'मनुष्य का परम धर्म' ब्राह्मणवाद का विद्रूप चेहरा उघाड़ने वाली एक श्रेष्ठ कहानी है।1916-20 की अवधि में प्रेमचन्द की उर्दू-हिन्दी मिलाकर लगभग 45 कहानियाँ और 7 कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। इस काल में उनके 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम बत्तीसी', 'सप्त सरोज' और नव निधि आदि के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुए। वस्तुतः इन संकलनों के प्रकाशन के बाद ही प्रेमचन्द हिन्दी के पाठकों के संपर्क में आए और बहुत शीघ्र उनके बीच उन्होंने लोकप्रियता भी हासिल कर ली।

6.2.3 सरकारी मुलाजमत के दौरान लिखी प्रेमचन्द की कहानियाँ

प्रेमचन्द सहित्यकार के रूप में जनता के सच्चे प्रतिनिधि थे और यही कारण है कि गाँधी जी के नेतृत्व में शुरू किए गये संवैधानिक संघर्ष का समर्थन करते हुए भी जनता की भावनाओं के प्रति उनकी जबरदस्त प्रतिबद्धता थी। इसका परिचय वे गाँधी जी के भारतीय राजनीति में आने के पूर्व ही अपनी 1908-18 की कहानियों में दे चुके थे। 1908 में ही उनका पहला कहानी संग्रह 'सोजे वतन' औपनिवेशिक शासन द्वारा इसलिए जब्त कर लिया गया था क्योंकि उसमें इनकी देशभक्ति की झलक दिखाई पड़ी थी। इसके बाद

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति के लिए उस प्रच्छन्न तरीके का इस्तेमाल करना शुरू किया जिसे अंग्रेजी में 'विकेरियन नेशनलिज्म' कहते हैं।1911-14 की अवधि में प्रकाशित 'राजा हरदौल', 'आल्हा', 'राजहठ', 'कैफरे-कर्दार', 'बांका जमींदार', 'अनाथ लड़की' आदि कहानियों में परोक्ष रूप से भारतीय जनमानस में उन भावनाओं को जागृत करने का प्रयास किया गया है जो देश को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराने के लिए आवश्यक था। पर देश प्रेम की परोक्ष अभिव्यक्ति वाली इन कहानियों के बीच ही उन्होंने 'वियोग और विलाप' जैसी कहानी भी लिखीं जो बिना किसी अन्य ओर इशारा किए हुए सीधे-सीधे स्वाधीनता आन्दोलन को चित्रित करती है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने सरकारी मुलाजमात के दौरान भी ऐसी कहानियाँ लिखीं जिनमें स्वाधीनता आंदोलन की अनूगँज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। जैसा कि गोपाल राय ने अपनी पुस्तक हिन्दी कहानी का इतिहास में लिखा है "प्रेमचन्द उस प्रबुद्व मध्यवर्गीय चेतना के प्रतीक थे, जो अपनी प्रतिकूल स्थितियों के प्रति विद्रोह करती हैं। कोई भी प्रबुद्ध चेतना गुलामी के बंधन को स्वीकार नहीं कर सकती। घनपत राय उस औपनिवेशिक सरकार की सेवा में थे, जिसने उनकी भावना की अभिव्यक्ति पर बन्धन लगा रखा था। अपनी आत्मा की आवाज को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें 'नवाब राय' नामक कल्पित लेखक का चोला ग्रहण करना पड़ा था और जब इस नवाब राय की वास्तविकता का पर्दाफाश हो गया तो उन्हें 'प्रेमचन्द' नाम की शरण लेनी पड़ी थी। ये 'प्रेमचन्द' भी पकड़े जा सकते थे, पर तरह तरह की सावधानियाँ बरतते हुए वे 'धनपत राय' के रूप में सरकारी मुलाजिम भी बने रहे और 'प्रेमचन्द' के रूप में उसकी जड़ भी खोदते रहे।"

6.2.4 सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के उपरांत प्रेमचन्द की कहानियाँ

प्रेमचन्द स्वाधीनता आंदोलन के साथ-साथ नहीं बल्कि उसके आगे-आगे चलने वाले साहित्यकार थे। उनकी यह प्रतिबद्धता इतनी गहरी थी कि वे सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने के लिए छटपटा रहे थे। वे इस बात को पूरी तरह से समझ चुके थे कि सरकारी नौकरी में रहते हुए वे अपनी भावना को ठीक तरह से जनता तक नहीं पहुँचा सकते थे। अन्ततः 1921 में उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया और उसके बाद उनकी कहानियों में स्वाधीनता आन्दोलन स्पष्ट रूप में चित्रित होने लगा। इसके उदाहरण के तौर पर 'दुस्साहस', 'लाग-डाट', 'विचित्र होली', 'आदर्श विरोध', 'लाल-फीता', 'सुहाग की साड़ी', 'माता का हृदय', 'बौड़म', 'परीक्षा', 'दीक्षा', 'इस्तीफा', 'खूनी', 'प्रतिशोध', 'राज्य भक्त', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जिनमें स्वदेशी आंदोलन, नशाबन्दी, स्वराज्य प्राप्ति, औपनिवेशिक शिक्षा और न्याय की आलोचना के साथ-साथ उस राजनीतिक पतन और कर्तव्य बोध के अभाव को भी चित्रित किया है जिसके कारण भारत अंग्रेजों का गुलाम बना था।

6.2.5 प्रेमचन्द के लेखन के अंतिम दौर की कहानियाँ

अब आप देखेंगे कि भारत में स्वाधीनता आन्दोलन का संघर्ष जैसे-जैसे जोर पकड़ता गया प्रेमचन्द की कहानियों में वह भी विविध रूप में अपने नये तेवर के साथ प्रस्तुत होता गया। बीसवीं शताब्दी का तीसरा दशक भी अपने आरम्भिक दशक के समान स्वाधीनता आन्दोलन की दृष्टि से अत्यन्त क्रियाशील बना रहा। इस दौर के आन्दोलन की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इनमें किसानों, मजदूरों, और स्त्रियों ने अपनी अभूतपूर्व हिस्सेदारी निभाई थी। प्रेमचन्द को इसका संवेदनात्मक बोध था। उनकी पत्नी शिवरानी देवी इस आन्दोलन में शरीक होकर जेल की सजा भुगत आयी थीं। प्रेमचन्द की इस काल की 'माँ', 'पत्नी से पति', 'होली का उपहार', 'आहुति' आदि कहानियों में भारतीय

राजनीति में आए इस परिवर्तन का बहुत विश्वसनीय अंकन हुआ है। स्त्री जागरण की दृष्टि से ये बेजोड़ कहानियाँ हैं। इसी तरह 'समरयात्रा' और 'जुलूस' आदि तीसरे दशक की कहानियों में भी प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन में आम आदमी की भागीदारी को रेखांकित किया है।

प्रेमचन्द अपने समय के सजग कथाकार थे और औपनिवेशिक शासन के शोषण के हर तरीके पर उनकी पैनी नजर थी। इन्हीं में एक शोषण जमीन्दारों, महाजनों और ब्राह्मणों द्वारा गरीब किसान मजदूरों का आर्थिक और धार्मिक शोषण था। प्रेमचन्द इसका मुख्य कारण ग्रामीण समाज में व्याप्त अशिक्षा और रूढ़िगत संस्कार को मानते थे। अपनी 'सवा सेर गेहूँ, 'मुक्तिमार्ग', 'बाबा जी का भोग', 'गुरुमंत्र', 'निमंत्रण', 'मोटेराम जी शास्त्री', 'पूस की रात' आदि कहानियों में थोड़े बहुत वैविध्य के साथ प्रेमचन्द ने ग्रामीण समाज की करूण भरी गाथा को ग्रामीण संवेदनात्मक तीव्रता के साथ प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द सही अर्थों में दलित संवेदना के प्रथम गंभीर कथाकार हैं। अंग्रेजी शासन व्यवस्था का एक तीखा सच दलित समाज पर जमींदारों, महाजनों और उच्च वर्ग का अत्याचार था। प्रेमचन्द गाँधी जी के इस विचार के कट्टर समर्थक थे कि जब तक वंचितों को उनके शोषण से मुक्त नहीं किया जायेगा और उन्हें मुख्यधारा से नहीं जोड़ा जाएगा, तब तक देश की आजादी संभव नहीं है। प्रेमचन्द ने अपनी कई कहानियों में दलित समाज की आँसू भरी गाथा प्रस्तुत की है। उन्होंने 'विध्वंस', 'सौभाग्य के कीड़े', 'मंदिर', 'घासवाली', 'दूध का दाम', 'ठाकुर का कुआँ', 'जुरमाना', 'सद्गति' और 'कफन' आदि कहानियों में दलित संवेदना को वाणी दी है। अंग्रेजी शासन के दौरान भारत में व्याप्त साम्प्रदायिक समस्या को लेकर भी प्रेमचन्द ने इस दौर में कुछ अच्छी कहानियाँ लिखीं। इस दृष्टि से उनकी 'मुक्तिधन', 'मन्दिर और मस्जिद', 'शुद्धि' और 'जिहाद' आदि कहानियों का विशिष्ट स्थान है जिनमें प्रेमचन्द ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम संबंध की समस्या के मूल में ऐतिहासिक कारण तो हैं हीं, पर साथ ही साथ इसके पीछे निहित स्वार्थ वाले वर्गों की साजिश के साथ-साथ औपनिवेशिक शासन की शातिर कूटनीति भी कहीं न कहीं अपना खेल खेलती रही हैं, जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत को कमजोर करना रहा है ताकि वह उस पर शासन करता रहे।

प्रेमचन्द ने अपने लेखन के अंतिम दौर में शिशु संवेदना पर आधारित बड़ी मार्मिक कहानियाँ लिखी हैं। 'चोर', 'कजाकी', 'रामलीला', 'नादान दोस्त', 'खेल' और 'ईदगाह' आदि बाल-संवेदना की बेजोड़ कहानियाँ हैं। पशु संवेदना की दृष्टि से भी प्रेमचन्द एक बेजोड़ कथाकार हैं। 'स्वत्व रक्षा', 'सैलानी बंदर', 'पूस की रात', 'दो बैलों की कथा' आदि कहानियों में पशु को केन्द्र में उपस्थित कर उसके माध्यम से सम्कालीन राजनीति पर प्रहार करने के क्रम में कुछ जीवन्त कहानियाँ लिखीं हैं।

इस प्रकार आपने देखा कि प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में जो काल की दृष्टि से 1907 से 1936 तक फैली हैं, भारतीय जीवन के विविध रूप को कितनी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। उनकी कहानियों का यह वैविध्य ही उन्हें महान कथाकार बनाता है। हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम साहित्यकार के उत्तरदायित्व को समझा और उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जनमानस को जगाने का प्रयास किया।

6.3 प्रेमचन्द की कहानी आलोचकों की जुबानी

6.3.1 प्रेमचन्द विवादों के घेरे में

जैसा आपने देखा कि प्रेमचन्द हिन्दी के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनकी कहानियों का वैविध्य निश्चित रूप से हिन्दी के आलोचकों के बीच एक बहस का मुद्दा रहा है। प्रेमचन्द की कहानियों के संबंध में नामवर जी का यह कथन काबिले गौर है जिसमें वे कहते हैं ''1905-1906 के बंग-भंग से लेकर 1936 तक, जब प्रेमचन्द की मृत्यु हुई, इन 30 वर्षों के भारतीय जीवन की धड़कन, उसका संघर्ष, उसका दुःख, उसका दर्द अपनी समस्त गहराई के साथ अपनी समस्त व्यापकता के साथ अगर किसी एक भारतीय लेखक में आप ढूढ़ना चाहें, तो रवीन्द्र नाथ ठाकुर के रहते हुए, शरत्चन्द्र के रहते हुए, सुब्रह्मण्यम भारती के रहते हुए, वि.स. खाण्डेलकर के रहते हुए, कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी के रहते हुए, डॉ. मुहम्मद इकबाल के रहते हुए भी मैं प्रेमचन्द का नाम लेना चाहूँगा, क्योंकि यही एकमात्र साहित्यकार हैं जिनके साहित्य में स्वाधीनता संग्राम की अमर गाथा अपने पूरे ब्योरे के साथ कही गई है। मैं कहना चाहूँगा कि इन 30 वर्षों के भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अमरगाथा अगर किसी एक साहित्यकार के साहित्य में आप देखना चाहें, तो प्रेमचन्द के साहित्य में देखें।'' नामवर जी का यह कथन निश्चित रूप से प्रेमचन्द के महत्व को प्रतिपादित करता है पर ऐसा भी नहीं है कि हिन्दी के सभी आलोचक नामवर जी के इस कथन पर एकमत हो हीं। दरअसल प्रेमचन्द को लेकर आरम्भ से ही एक विवाद की स्थिति भी बन गई थी। आपको जानकर यह आश्चर्य भी होगा कि प्रेमचन्द ऐसे समर्थ रचनाकार, जिसने हिन्दी कथा साहित्य को अपनी उँगली पकड़ाकर चलना सिखाया, फिर भी यह आरोप लगाया गया था कि उनमें एक बड़े कलाकार की क्षमता है ही नहीं। इसका जवाब देते हुए जनार्दन प्रसाद झा द्विज, जिनकी गणना प्रेमचन्द के आरम्भिक आलोचकों में की जाती है, ने कहा था ''अपनी कृतियों में अपने समय का सर्वांग सुन्दर चित्र उतारना यदि साहित्यिक अक्षमता है तो इसी अक्षमता के नाते प्रेमचन्द जी भारतीय कथा साहित्य के संसार में आज अपने समय के सबसे विश्वस्त प्रतिनिधि कलाकार कहे जा सकते हैं।'' द्विज जी आगे कहते हैं ''सच तो यह है कि इनका प्रस्तुत किया हुआ साहित्य सामयिकता की छाप लिए हुए है, इसी से उसकी आत्मा को हम अच्छी तरह पहचान सकते हैं, उसे जी खोलकर प्यार कर सकते हैं। उसके साथ अपनी अनुभूति का सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।''

पर द्विज जी के इस वक्तव्य से यह नहीं समझना चाहिए कि उस समय प्रेमचन्द की केवल प्रशंसा ही हो रही थी। उस काल में उन पर तरह-तरह के आरोप भी लगाये जा रहे थे। यहाँ तक कि उन पर दूसरों की कहानियों से थीम की नकल तक का आरोप भी लगाया गया था। प्रेमचन्द जब अपनी कहानियों से धूम मचा रहे थे तभी श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलिमुख' ने 'सुधा' पत्रिका में प्रेमचन्द की एक कहानी 'विश्वास' की समीक्षा की। उन्होंने लिखा कि '' हाल केन के इटरर्नल सिटी का सारांश देना 'विश्वास' कहानी को ही दुहरा देना है।''इसी तरह शिलीमुख जी ने प्रेमचन्द की एक और कहानी 'कौशल' पर मोपासा की कहानी 'नेकलेस' की नकल का आरोप लगाया। यही नहीं उस काल के कई आलोचको ने प्रेमचन्द पर हिन्दू और विशेषकर ब्राह्मण विरोधी होने का भी आरोप लगाया। शिलीमुख जी ने अपने एक लेख 'प्रेमचन्द की कला' में लिखा ''ब्राह्मणों के सुधार का प्रेमचन्द जी ने ऐसा ठेका लिया है कि एक सेवा-सदन का छोड़कर सर्वत्र ही ब्राह्मण निन्दनीय और उपहास्य ठहराए गए हैं और उनको जूते लगवाए गए हैं।''यहाँ यह ध्यातव्य है कि उस युग में प्रेमचन्द पर इस पहलू के परिप्रेक्ष्य में केवल साहित्यिक आलोचना ही नहीं हो रही थी वरन् उन पर मुकदमा भी दायर किया गया था। प्रेमचन्द

की कहानी 'मोटेराम शास्त्री' पर लखनऊ के एक वैद्य महाराज ने यह आरोप लगाते हुए कि यह कहानी उनके उपर ही लिखी गई है लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट के यहाँ मानहानि का दावा तक दायर कर दिया। खैर प्रेमचन्द किसी तरह इस मुकदमें से बरी तो हो गए लेकिन तत्कालीन हिन्दी आलोचना जगत् ने उन्हें इस तथाकथित अपराध से बरी नहीं किया। उनको इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया गया कि उन्होंने एक आदमी का मजाक उड़ाया था बल्कि उनकी निंदा इस बात के लिए होती रही कि ब्राह्मण विरोध उनका स्थाई भाव है और यह उचित नहीं है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि कालांतर में हिन्दी आलोचना जगत में प्रेमचन्द की दलित संवेदना से संबंधित कहानियों को लेकर उनपर ब्राह्मण समर्थक और दलित विरोधी होने का न केवल आरोप लगाया गया बल्कि उसके विरोध स्वरूप 'रंगभूमि' की प्रति भी जलाई गई। अब इसे हिन्दी जगत् की विडंबना ही कहकर संतोष कर सकते हैं कि जहाँ उनकी कहानी 'सद्गति' में आलोचकों को एक ओर उनका ब्राह्मण विरोधी रूप दिखाई पड़ता है तो वहीं दूसरी ओर दलित विरोधी रूप। ये इस तरह की आलोचना है जिससे प्रेमचन्द जैसे कथा सम्राट को समझना मुश्किल होगा। वस्तुतः प्रेमचन्द अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त बुराई का पर्दाफाश कर रहे थे और जैसा कि नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्दः साहित्यिक विवेचन' में लिखा है ''प्रेमचन्द की मुख्य प्रेरणा, जिसके आधार पर उन्होंने कहानियों का निर्माण किया, प्रगतिशील थी। वह समाजहित और समाजोत्थान की भावनाओं से प्रेरित थे। इस मूल प्रेरणा के कारण प्रेमचन्द की कहानियों में एक विलक्षण आशावाद, मानव महत्व के प्रति अमिट विश्वास और समाज की अनिष्टकारी शक्तियों के विरुद्ध एक कठोर व्यंग्य का भाव भरा हुआ है। यह प्रेमचन्द के व्यक्तित्व की विशेषता रही है और इसका शुभ परिणाम उनकी कहानियों में सर्वत्र देखा जाता है।''

6.3.2 प्रेमचन्द की कहानियाँ और रामविलास शर्मा

प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों पर आलोचनात्मक लेख उनके प्रकाशन के तुंरत बाद ही प्रकाशित होने लगे थे। पद्मसिंह शर्मा, रामदास गौड़, अमरनाथ झा, नरोत्तम दास, अवध उपाध्याय, ब्रजरत्न दास, शिली मुख, नन्ददुलारे वाजपेयी, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, ज्योति प्रसाद निर्मल, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने अपनी भूमिकाओं, पत्रों, लेखों आदि में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों की आलोचना की थी। जनार्दन प्रसाद झा द्विज की 'प्रेमचन्द की उपन्यास कला' को प्रेमचन्द पर लिखित पहली आलोचना पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है। नन्ददुलारे वाजपेयी के प्रेमचन्द संबंधी लेख उनकी दो पुस्तकों, 'हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी'1942 ई. और 'आधुनिक साहित्य' 1950 ई. में संकलित हैं। इसके पहले 1936 ई के लगभग प्रकाशचन्द गुप्त ने प्रेमचन्द पर कुछ निबन्ध लिखे थे, जो 1939ई. में प्रकाशित उनकी पहली पुस्तक 'नया हिन्दी साहित्य–एक भूमिका' में संकलित हुए। गुप्त जी ने अपनी आधुनिक हिन्दी साहित्य-एक दृष्टि 1952 ई., हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा 1953 ई., हिन्दी साहित्य धारा 1956 ई. और आज का हिन्दी साहित्य 1966 ई. आदि पुस्तकों में भी प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया और उनकी कहानियों की सराहना की।

प्रेमचन्द की आलोचना को एक नयी ऊँचाई पर पहुँचाने का काम रामविलास शर्मा की पुस्तक 'प्रेमचन्द' ने किया जो 1941 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में प्रेमचन्द की कहानियों पर विचार करते हुए उन्होंने कहा ''कहानियों में शब्द चित्रों के साथ वह कथा-तत्व का पूरा ध्यान रखते हैं और हास्य और व्यंग्य उनके चित्रण को सजीव बनाते हैं। वार्तालाप में स्वाभाविकता ऐसी होती है कि जिस श्रेणी का व्यक्ति होता है, वैसी ही उसकी

भाषा भी होती है। प्रेमचन्द के पात्रों की भाषा एक अध्ययन करने की वस्तु है; देहाती, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, और इनके मिश्रण से बनी अनेक प्रकार की भाषा-शैलियाँ एक युग के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का इतिहास है।'कफन' के दलित पात्रों से लेकर 'शतरंज के खिलाड़ी' के बीते नवाबों तक सैकडों श्रेणियों के पात्रों का उनकी स्वाभाविक भाषा में बातचीत कराना समाज के अद्भुत ज्ञान का साक्षी है। ऐसी क्षमता संसार के महत्तम साहित्यिकों में पाई जाती है। प्रेमचन्द का गद्य देहाती भाषा का दृढ़ भूमि पर निर्मित हुआ है; कहावतें, मुहावरे, उपमाएँ, उन्होंने वहीं से सीखी हैं; भाषा की सरलता के लिए भी उन्हें वहीं से प्रेरणा मिली है।............देश के गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति, उनसे उनके प्रगाढ़ परिचय और उनके चित्रण की सच्चाई ने उन्हें सफल कलाकार बनाया है।'' रामविलास जी ने अपनी एक अन्य पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग', जो 1952 में प्रकाशित हुई थी, में प्रेमचन्द की कहानियों का विवेचन करते हुए कहा ''अच्छी कहानी लिखने के लिए विषय-वस्तु का होना बहुत जरूरी है। लेखक को गहरी जानकारी होनी चाहिए। प्रेमचन्द में ये सब बातें थीं इसलिए वे ऐसी कहानियाँ लिख सके जिनमें जनता ने अपने जीवन की झलक देखी। समाज की पीड़ित विधवाएँ, सौतेली माताओं से परेशान बालक, महंतों और पुरोहितों से ठगे जानेवाले किसान, दूसरों की गुलामी करके भी पेट न भर पानेवाले अछूत, महाजन का सूद भरते-भरते जिंदगी गारत करने वाले किसान, ये और इस तरह के सभी लोग कहानीकार प्रेमचन्द में एक अच्छा दोस्त और सलाहकार पाते हैं। समाज के अन्यायी और अत्याचारी, निठल्ले और मुफतखोर, अंग्रेजी राज के वफ़ादार मददगार प्रेमचन्द में अपनी वह असली सूरत देख सकते है जो जनता का पक्ष लेनेवाले एक सजग साहित्यकार को दिखाई देती है।''

6.3.3 प्रेमचन्द और परवर्ती आलोचना

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने 'साहित्य' में प्रकाशित अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों तथा 'आलोचना'-5 में प्रकाशित लेख में प्रेमचन्द विषयक आलोचना को नया आयाम प्रदान किया। उन्होंने प्रेमचन्द को मुख्य रूप से मध्यवर्ग का लेखक घोषित करते हुए लिखा–''यद्यापि प्रेमचन्द ने रानी सारंधा और कफन जैसी उत्कृष्ठ कहानियाँ भी लिखीं, फिर भी निर्विवाद है कि उन्होनें अधिकतर मध्यवर्ग को ही अपनी कहानियों का आधार बनाया है और उनकी कहानियां आसानी से 'जीवन के खंड' बन गए हैं।''

1956 में नन्ददुलारे वाजपेयी की एक किताब 'प्रेमचन्दः साहित्यिक विवेचन' का पहला संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें प्रेमचन्द के उपन्यासों के साथ-साथ वाजपेयी जी ने उनकी कहानियों का भी अलग-अलग विवेचन प्रस्तुत किया और कई स्थानों पर उनके कला और भाव पक्ष को लेकर कड़ी आलोचना भी प्रस्तुत की पर उसके निचोड़ के रूप में कहा ''प्रेमचन्द की मुख्य प्रेरणा, जिसके आधार पर उन्होंने अपनी कहानियों का निर्माण किया , प्रगतिशील थीं। वह समाजहित और समाजोत्थान की भावना से प्रेरित थीं। इस मूल प्रेरणा के कारण प्रेमचन्द कहानियों में एक विलक्षण आशावाद, मानव महत्व के प्रति अमिट विश्वास और समाज की अनिष्टकारी शक्तियों के विरुद्ध एक कठोर व्यंग्य भरा हुआ है। 'प्रेमचन्द की कई कहानियों और विशेषकर उनकी आरम्भिक कहानियों पर आदर्शवाद के लगातार हावी होते जाने की ओर का इशारा वाजपेयी जी ने किया था। कालांतर में कई और आलोचकों ने उनपर उँगली उठाई पर जैसा कि खगेंद्र ठाकुर द्वारा सम्पादित पुस्तक आलोचक के मुख से' में डा. नामवर सिंह का कथन है'' प्रेमचन्द की

पहली कहानी, जो आपको याद होगी और जिसका अक्सर जिक्र किया जाता है, कभी-कभी इतिहास के रूप में-'दुनिया का सबसे अनमोल रतन'-कई दृष्टियों से दिलचस्प है। कहानी में एक प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है कि मैं अपना प्यार तुम्हें तभी दूँगी, जब तुम मुझे दुकनिया का सबसे अनमोल रतन लाकर दोगे। कहानी उस किस्सागोई के अंदाज से चलती है जिसमें फारसी कहानियाँ चला करती थीं। कोई प्रेमिका, कोई बेगम, कोई माशूका, अपने आशिक से ऐसी अनोखी, अद्‌भुत सी चीज माँगती है, जिसका मिलना बहुत मुश्किल हो और जबतक वह उसे ला न दे, तब तक वह उसे अपना प्यार नहीं देती। कहानी शुरू होती है और पुराने ढर्रे पर चलती है। लेकिन जब आशिक लौटता है, तो वह तीन चीजें लेकर लौटता है, एक फाँसी के तख्ते पर चढ़े हुए आदमी के आँसू, दूसरी अपनी शौहर की लाश को लेकर जल जानेवाली बीबी की राख और तीसरी शहीद हो जानेवाले एक राजपूत के खून की एक बूँद। ये तीनों चीजें दुनिया के सबसे अनमोल रतन हैं। यहाँ ध्यान दीजिए कि कहानी कहने का ढाँचा तो फारस की पुरानी कहानियों के अन्दाज की तरह ही था, लेकिन जो अनमोल रतन उन्होंने चुने थे, वे नये थे। ये तीनों चीजें उस नये अन्दाज और नयी भावना का नमूना है, जिसे आप आदर्शवाद कह सकते हैं। इनके द्वारा प्रेमचन्द नई देशभक्ति और नई राष्ट्रीय भावना को अपनी कहानियों के अन्दर लाने कोशिश कर रहे थे।'' नामवर जी के इस कथन की सत्यता प्रेमचन्द की कहानियों के उत्तरोतर विकास से सहज ही प्रमाणित हो जाती है। यही कारण है कि हिन्दी के लगभग सभी आलोचक प्रेमचन्द के सम्बन्ध में नामवर जी से एकमत दिखाई पड़ते हैं।

6.4 सारांश

इस प्रकार आपने देखा कि प्रेमचन्द ने कैसे हिन्दी कहानी को एक नई शक्ति प्रदान की। जिस समय प्रेमचन्द का हिन्दी कहानी के क्षेत्र में पदार्पण हुआ था उस समय तक आधुनिक हिन्दी कहानी का स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया था। प्रेमचन्द ने न केवल हिन्दी कहानी को एक दिशा प्रदान की बल्कि उसे सामान्य जनमानस की आवाज भी बना दी। रामविलास शर्मा ने इसे ही प्रेमचन्द का जातीय स्वर कहा था। उस काल की सबसे बड़ी सच्चाई राजनीतिक मुक्ति की आकांक्षा में छटपटाता भारतीय समाज और उसके दमन को उतारू औपनिवेशिक शासन था। औपनिवेशिक ताकत लगातार इस बात की कोशिश कर रही थी कि भारत में कोई जनशक्ति न उभर पाये। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के माध्यम से उसी जनशक्ति को जगाने का प्रयास किया। इसके साथ ही आपने देखा कि प्रेमचन्द ने ऐसी कहानियाँ भी लिखीं, जातिगत, संप्रदायगत और आर्थिक भेदभाव से मुक्त तथा श्रेष्ठ नैतिक चेतना से युक्त राष्ट्रीय बोध पैदा हो सके। प्रेमचन्द जनता के लेखक थे और उन्होंने सामान्य जनता की आवाज को ही अपनी कहानियों में वाणी दी। हिन्दी के आलोचना जगत् ने भी प्रेमचन्द के कथा लेखन को खूब सराहा। यद्यपि प्रेमचन्द जैसे महान लेखक पर कुछ छींटाकशी कर अपने को साहित्यिक जगत् में चर्चा का विषय बनाने वाली प्रवृत्ति भी कुछ आलोचकों में दिखाई पड़ी पर उनकी आवाज प्रेमचन्द के प्रशंसकों के सामने नक्कारखानें में तूती के समान ही सिद्ध हुई।

6.5 अभ्यास

1. प्रेमचन्द के कहानी लेखन के क्षेत्र में आगमन के समय कहानी के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2. प्रेमचन्द के आरंभिक कथा लेखन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

3. प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन को किस रूप में चित्रित किया है। प्रकाश डालिए।

4. प्रेमचन्द की कहानियों के तारतम्य में होनेवाले विवादों पर अपना अभिमत स्पष्ट कीजिए।

5. प्रेमचन्द की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में रामविलास शर्मा के कथन पर प्रकाश डालिए।

6. प्रेमचन्द की कहानियों से संबंधित आलोचकीय मंतव्य को स्पष्ट कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 "मनोवृत्ति" : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री

7.3 'मनोवृत्ति' का समय-बोध और कथा-शिल्प

7.4 'मनोवृत्ति' कहानी का कथा-संक्षेप और विवेचन

7.5 पुरुष मनोवृत्ति और भारतीय स्त्री

7.6 निष्कर्ष

7.7 अभ्यास

7.0 उद्देश्य

यह एम.ए.हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'हिन्दी कहानी' से सम्बन्धित दूसरे खण्ड की तीसरी इकाई है। इस इकाई में आप हिन्दी के महान कथाकार प्रेमचंद के कथालोक से सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे। इस इकाई में हम प्रेमचंद की कहानियों में अपेक्षाकृत अचर्चित और विषय की दृष्टि से एक दम अछूती कहानी 'मनोवृत्ति' का पाठ करेंगे। इस कहानी के अध्ययन के क्रम में आप

- प्रेमचंद की कथा-दृष्टि का संक्षिप्त अध्ययन करते हुए उनके कथा लेखन के विविध आयामों की संक्षिप्त जानकारी पा सकेंगे/सकेंगी;
- प्रेमचंद प्रमुखतः किसान चेतना के कथाकार थे। लेकिन इस इकाई में 'मनोवृत्ति' कहानी के माध्यम से हम प्रेमचंद की स्त्री विषयक कहानियों का अध्ययन करेंगे/करेंगी;
- 'मनोवृत्ति' कहानी के माध्यम से हम स्त्रियों के संदर्भ में पुरुषों में पाई जाने वाली मनोवृत्तियों की पहचान करते हुए यह जान सकेंगे/सकेंगी कि पुरुष किस तरह स्त्रियों के प्रति अनैतिक मानसिकता से ग्रस्त होता है;
- इस कहानी के माध्यम से हम स्त्रियों के बारे में स्वयं प्रेमचंद की दृष्टि से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- इस कहानी के बहाने हम प्रेमचंद के नजरिये से नारी विमर्श पर भी विचार कर सकेंगे/सकेंगी।

7.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद की कहानियों का संसार विविध और बहुरंगी है। प्रेमचंद को अपने समय के यथार्थ के प्रायः सभी आयामों का गहरा परिज्ञान था। प्रेमचंद की रचनाओं से गुजरने का मतलब है उनके समय के एतिहासिक सत्य से गुजरना। भारतीय साहित्य के माध्यम से अगर भारतीय जीवन को जानना हो तो प्रेमचंद के साहित्य का अध्ययन करना अनिवार्य होगा। प्रेमचंद किसी खास प्रवृत्ति या वाद के समर्थक रचनाकार नहीं थे। उनकी रचनात्मकता का ग्राफ निरंतर गतिशील और विकासमान रहा है। उनकी रचनात्मक सोच और जीवन-

दृष्टि में जैसा गतिशील परिवर्तन देखने को मिलता है वह उनकी उन्नत चेतना की ग्रहणशीलता और अपने समय और समाज के प्रति गहरे सरोकार का ही प्रमाण है। आदर्शवाद और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से चलकर यथार्थवाद तक की रचनात्मक यात्रा में प्रेमचंद की रचनादृष्टि को समय के सत्यो के अनुरूप निरंतर विकसित होते देखा जा सकता है। प्रेमचंद नें अपने आसपास की जिन्दगी को उसी तरह देखा और समझा जिस तरह कोई भी जागरूक आदमी देख और समझा करता है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि उन्होनें एक जागरूक और चैतन्य रचनाकार की तरह अपने आसपास की सभी स्थितियों के बीच खुले मन से गुजरने दिया है। इसलिए प्रेमचंद किसी खास किस्म के वर्ग या विचार के कथाकार नहीं हैं। प्रेमचंद अपनी कहानियों के माध्यम से जीवन के हर रूप और रंग को समझना चाहते थे। यही कारण कि वे स्वयं किसी खास अनुभव और स्थिति तक सीमित कथाकार नहीं थे। उनमें एक किस्म की दुर्लभ परिपूर्णता देखने को मिलती है। अकारण नहीं है कि नयी कहानी या जनवादी कहानी सहित तमाम कथा आंदोलनों नें, प्रेमचंद की व्यापक कथा-संवेदना में ही अपने लिए प्रस्थान का आधार खोजा।

प्रेमचंद सच्चे अर्थो में प्रगतिशील रचनाकार थे। प्रेमचंद की कहानियों का विकास उसी रास्ते से हुआ है जिस रास्ते से भारत में यथार्थवाद का विकास हुआ है। हर तरह की रूढ़ियों का विरोध करना ही जैसे उनकी रचनात्मकता का उद्देश्य था। भारतीय संस्कृति और इतिहास में पूरी आस्था रखते हुए भी वे उसमें व्याप्त रूढ़ियों की खुलकर आलोचना करते थे। प्रेमचंद नें समाज में हासिये का जीवन जीने वालों को साहित्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित किया। उन्हें जुबान दी और अपने कथा संसार का नायक बनाया।

प्रेमचंद अपने समय में व्याप्त सामंती मूल्यों और पिछड़ी चेतना से लगातार संघर्ष करने वाले कथाकार थे। उनकी कहानियां इसी संघर्षप्रक्रिया में लिखी गई हैं। समाज में दलन और उत्पीड़न झेलते हुए हासिए का उपेक्षित जीवन जीने वाले किसान, स्त्री और दलित पात्रों को उन्होंने न केवल अपनी रचनाओं का विषय बनाया अपितु उनके पक्ष में प्रगतिशील मूल्यों की रचना के लिए संघर्ष भी किया।

प्रेमचंद के विशाल कथा-कैनवास को एक साथ दृष्टि में रखपाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यही कारण है कि उन्हें उनकी कुछ प्रतिनिधि कहानियों के लिए बार बार पढ़ा और सराहा जाता है जबकि उनके लेखन का विशाल भाग अनदेखा छूट जाता है। शुरू की कुछ कहानियों में पंचपरमेश्वर, बड़ेघर की बेटी और बाद की कहानियों में कफन और पूस की रात, सवासेर गेहूं, ठाकुर का कुंआ और सद्गति आदि कहानियों पर ही चर्चा हो कर रह जाती है। प्रेमचंद की कहानियों में से प्रतिनिधि कहानियों के चयन की कठिनाई यह है कि कला और विषय वस्तु के लिहाज से उनकी कहानियों का ग्राफ काफी ऊंचा और नीचा है। उनके यहां स्त्री विषयक कहानियां भी प्रचुर मात्रा में हैं जिन्हे पढ़ कर आसानी से समझा जा सकता है कि प्रेमचंद न केवल समाज में स्त्री के सम्मान और गौरव की प्रतिष्ठा चाहते थे बल्कि वे परम्परागत रूढियों में घुट रही स्त्री को घर की दीवारों के भीतर से बाहर निकाल कर उसे मुक्त हवा में सांस लेने के लिए अधिकार के भी पक्षधर थे। इस इकाई में पाठ के लिए चयनित कहानी मनोवृत्ति भी पुरुषोचित स्वतंत्रता का लाभ उठाने वाली एक कुलवधू के बारे में समाज के पितृसत्तात्मक नजरिए का विश्लेषण करती है।

7.2 प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री

प्रेमचंद का आविर्भाव स्वतंत्रता आंदोलन के ऐसे दौर में हुआ जब स्वतंत्रता और नारी

जागरण की बात करना हर संवेदनशील रचनाकार के लिए अनिवार्य था। प्रेमचंद से पहले नवजागरण काल में राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, गोविन्द रानाडे और महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि नें स्त्रियों के जागरण का विगुल फूंका था। इनके बाद बीसवीं सदी में एक लेखक के रूप में प्रेमचंद और समाज चिंतक के रूप में गांधी का आविभार्व होता है। प्रेमचंद का मानना था कि राष्ट्रीयता की जो लहर देश में आई है वह स्त्री पुरुषों के बीचे के भेद को मिटा कर रहेगी। प्रेमचंद स्त्रियों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिलाना चाहते थे। उनके अनुसार विवाह के नियम स्त्री और पुरुषों दोनों पर समान रूप से लागू होने चाहिए। प्रेमचंद सतीत्व और यौन शुचिता के समर्थक थे लेकिन वे इस नियम को स्त्रियों के साथ पुरुषों पर भी समान रूप से लागू मानते थे। वे चाहते थे कि स्त्री और पुरुष दोनों का सम्पत्ति पर समान अधिकार हो और पुरुष पत्नी के जीवनकाल में दूसरा विवाह न कर पाए।

स्त्री का जीवन और संघर्ष प्रेमचंद की कहानियों के केन्द्र में है। सामंती मूल्यों के दुहरेपन और स्त्री विरोधी रवैये का प्रेमचंद ने जमकर विरोध किया है। आमतौर पर प्रेमचंद को ग्रामीण और दलित तथा पिछड़े वर्ग का कथाकार माना जाता है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में इस वर्ग की महिलाओं का प्रातिनिधिक चित्रण हुआ भी है। गोदान, कर्मभूमि आदि उपन्यासों में ग्रामीण पृष्ठभूमि की अनेक अविस्मरणीय महिला चरित्रों का चित्रण करके प्रेमचंद ने साबित कर दिया है कि वे स्त्री मनोविज्ञान के बेजोड़ चित्रकार हैं। उनकी स्त्रियां आत्मसम्मान के लिए मर मिटने वाली और निडर होने के साथ-साथ पारिवारिक मामलों में एकनिष्ठ और नैतिक भी हैं। प्रेमचंद की कहानियों में जो नारी चरित्र उभर कर आता है उसमें गरिमा और ओजस्विता है। प्रेमचंद पुरुष की तुलना में स्त्री को अधिक गुणवती और श्रेष्ठ मानते हैं। उनके अनुसार स्त्रियां आध्यात्मिक गुणों से युक्त और निःस्वार्थ सेवा भाव से परिपूर्ण होती हैं। वे जहां एक तरफ उदार और रहम दिल हैं वहीं उनमें अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने की दृढ़ता और न्यायप्रियता भी पाई जाती है। लेकिन प्रेमचंद की रचनात्मकता का यह एक पक्ष है। वास्तविकता यह है कि प्रेमचंद ने पढ़े-लिखे शिक्षित मध्यवर्गीय शहरी परिवारों में आर्थिक और सांस्कृतिक अथवा नैतिक स्तरों पर दोयम दर्जे का जीवन जीने को अभिशप्त स्त्रियों की दशाओं पर भी पर्याप्त रोशनी डाली है और समानता के लिए उनके संघर्षों को भी अपनी रचनाओं में प्रतिष्ठित किया है। प्रेमचंद स्त्री और पुरुष की समानता के पक्षधर थे। वे दोनों को समान स्तर की स्वातंत्रता और अधिकार दिलाना चाहते थे। उनका मानना था कि महिलाओं को गृहणी बनने की शिक्षा देना भी अनिवार्य है लेकिन साथ ही उन्हें सिर्फ विवाह योग्य बनाने तक सीमित रखने वाली शिक्षा देना उचित नहीं। वे इस बात को भी मानते थे कि भारतीय सांस्कृतिक संदर्भो से कटी हुई पश्चिमी काट की शिक्षा की मांग करना उचित नहीं है। 'मिस पद्मा' जैसी कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद ने वैवाहिक बंधन में बंधकर रहने और पारिवारिक जीवन जीने की आवश्यकता की तरफ इशारा किया है। स्त्री जीवन विषयक प्रेमचंद की तमाम ऐसी कहानियां हैं जो उत्तर औपनिवेशिक जीवन का स्वप्न रचती हैं। ये दरअसल वे कहानियां हैं जो भारतीय समाज में स्त्रियों की आशाओं, अपेक्षाओं, संघर्षो और त्रासदियों को एक व्यापक और गतिशील अंर्तदृष्टि के साथ उजागर करती है।

स्वाधीनता प्रेमचंद के रचनाकर्म का केन्द्रीय विषय है। प्रेमचंद के लिए स्वाधीनता कोई स्थूल अवधारणा नहीं है। प्रेमचंद मानते थे कि स्त्रियों, दलितों, किसानों और मजदूरों की स्वाधीनता के संदर्भ सामान्यतः एक होते हुए भी अपने आप में विशिष्ट और अलग हैं। स्त्री और पुरुष एक ही समाज और परिस्थिति में रहते हुए भी अपनी-अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के कारण अलग तरह के अनुभवों से गुजरते हैं। इसलिए स्वाधीनता के उनके अपने-अपने आशय और यथार्थ हैं। स्वाधीनता के मामले में स्त्री समाज के सबसे

निचले पायदान पर है। प्रेमचंद का मानना था कि स्वाधीनता वही जो हमारी अस्मिता और पहचान को मान्यता दे। हमें बराबरी और सम्मान दिलाए। हमारी परम्परा और नैतिकता में व्याप्त पुरुष वर्चस्वी पितृसत्तात्मक भेद भाव से मुक्ति दिलाए। सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से समाज में स्त्रियों के विरूद्ध भेदभाव करने वाली स्थितियों को उजागर करने के लिए प्रेमचंद ने बहुत सारी कहानियां लिखीं। विधवा समस्या, बाल विवाह, असमान विवाह और सामंती पारिवारिक शोषण के अनेक रूपों को प्रेमचंद ने अपनी कहानियों का विषय बनाया। 'शांति', 'झांकी', 'शिकार', 'कुसुम' ,'जीवन का शाप', 'गृह-नीति'',लांछन' 'नैराश्य लीला' तथा 'रहस्य' आदि ऐसी कहानियां हैं जिसमें प्रेमचंद ने स्त्री में उफनती हुई स्वतंत्रता की चाह और चेतना को दिखाया है। इन कहानियों के बहाने प्रेमचंद नें यह संदेश दिया है कि स्त्रियां पुरुषों की गुलाम नहीं हैं। प्रेमचंद ने जहां एक तरफ 'शांति' कहानी के माध्यम से सुनीता जैसी स्वाभिमानी चरित्र की अवधारणा रखी वहीं 'नैराश्यलीला' में विधवा कैलासी कहती है कि'' मैं अपने आत्म सम्मान की रक्षा स्वयं कर सकती हूं। मैं इसे घोर अपमान समझती हूं कि पग पग पर मुझ पर शंका की जाय, नित्य कोई चरवाहों की भांति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे किसी खेत में न जा पड़ूं। यह दशा मेरे लिए असह्य है।'' इसी कहानी में प्रेमचंद नें विधवा कैलासी के बारे में लिखा है कि '' कोई विवाह की बात चलाता तो वह मुंह फेर लेती । उसकी निगाह में वह विवाह नहीं भोली भाली कन्याओं का शिकार था। बारातियों को वह शिकारियों के कुत्ते समझती। यह विवाह नहीं बलिदान है।'' इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचंद समाज में विधवाओं की दशा से काफी असंतुष्ट थे और बालविवाह को अभिशाप मानते थे। स्त्रियों में स्वाभिमान की चेतना को जागृत होते देखना चाहते थे।

नये युग में स्त्रियों की उभरती नयी छवि प्रेमचंद की नजरों से ओझल न थी। प्रेमचंद की कहानियों में स्त्रियां प्रायः पुरूष प्रभुत्ववाद की शिकार होती हैं। लेकिन कई कहानियों में उनकी स्त्रियां स्वाधीनता की नई लाली और स्वाभिमान लेकर उभरती हैं। 'कुसुम' नामक कहानी में स्त्री अपने दहेज लोभी पति को झिड़क देती है। एक दूसरी कहानी 'कायर' में स्त्री सोचती है कि विवाह का आधार यदि प्रेम न हो तो वह देह का विक्रय है।

'सेवासदन','निर्मला' और 'गबन' पूरी तरह स्त्री समस्या पर केन्द्रित उपन्यास हैं। सेवासदन पूरी तरह से परिवार की अवधारणा पर एक कथात्मक विमर्श है। परिवार की सीमाओं में सुमन का लगातार घुटते रहना और उसकी तुलना में भोली नामक वेश्या की स्वच्छंदता का आनन्द- दो विपरीत स्थितियों को आमने सामने रखकर प्रेमचंद ने परिवार नामक संस्था की भीतरी समस्याओं को उभारने का प्रयास किया है। प्रेमचंद जहां परिवार नामक संस्था की आंतरिक सड़ांध को लेकर व्यथित थे वहीं वे इस संस्था से मुक्त स्वच्छंद जीवन के स्वीकार को लेकर आशंकाग्रस्त भी थे। गोदान में उन्होनें सहजीवन का मार्ग तलाशने का प्रयास अवश्य किया है जिससे पता चलता है कि सामंती किस्म की पारिवारिक जकड़न में स्त्रियों का घुटते रहना उन्हें कतई स्वीकार्य न था।

प्रेमचंद की कहानियों में व्यक्त नारी विषयक विचार आज के समय में प्रचलित नारी विमर्शों का भारतीय पाठ रचते दिखाई देते हैं। आज का नारी विमर्श निश्चय ही प्रेमचंद के समय से आगे का है मगर प्रेमचंद द्वारा उठाए गये स्त्री विषयक प्रश्नों की प्रासांगिकता इस बात में है कि वह आज के समय के नारी विमर्श को रास्ता दिखाने में अभी भी सक्षम है। 'मनोवृत्ति' नामक कहानी में प्रेमचंद ने पुरुष मानसिकता को जिस रूप में प्रस्तुत किया है उससे आज का पुरुष वर्चस्वी समाज मुक्त नहीं हो पाया है।

7.3 'मनोवृत्ति' का समय-बोध और कथा-शिल्प

प्रेमचंद ने स्त्री पात्रों को केन्द्र में रखकर लगभग डेढ़ सौ कहानियां लिखी हैं। हर कहानी किसी न किसी रूप में स्त्री जीवन से जुड़ी कोई न कोई समस्या उठाती है। इन कहानियों के माध्यम से स्त्री समस्याओं पर प्रेमचंद के विचारों और सुझावों को समझा जा सकता है। इन कहानियों में स्त्री सम्बन्धी समस्याओं और उनके समाधान के संकेत इतने स्पष्ट हैं कि उनमें विमर्श के लिए अवकाश की कम ही जगह छूटती देखी जा सकती है। इस लिहाज से देखें तो 'मनोवृत्ति' एक नए शिल्प-कौशल और विचार की कहानी है। यह 1934 में लिखी गई कहानी है। यह वह दौर है जब प्रेमचंद की कहानी-कला अपने शिखर पर पहुँच रही थी। यह 'सद्गति', 'कफन', 'ठाकुर का कुंआ' और 'पूस की रात' जैसी कहानियों का रचनात्मक दौर है। इस दौर में प्रेमचंद अपने पूर्ववर्ती कथा शिल्प और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से बाहर निकल कर आलोचनात्मक यथार्थवाद की मनोविज्ञानपरक कहानियां लिखने लगे थे। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक गहरे मंतव्यों को व्यक्त करने की उनकी कला इस दौर में अपने उत्कर्ष पर थी। यह उनके अपने ही कथालेखन के ग्राफ में एक ऐसा उछाल था जिसके कारण आलोचको को इन कहानियों की व्याख्या में भारी असुविधाओं का सामना करना पड़ा। अकारण नहीं कि कफन जैसी कहानी में व्यक्त यथार्थ की मनोवैज्ञानिकता को समझनें में चूक के कारण इन्द्रनाथ मदान जैसे आलोचकों को वह कहानी अतिरेकपूर्ण और अविश्वसनीय प्रतीत हो रही थी। ये वे कहानियां हैं जो स्वयं प्रेमचंद की पूर्ववर्ती धारणा के आगे प्रश्न चिन्ह लगा देती हैं!

आम तौर पर प्रेमचंद की कहानियां वर्णनात्मक शैली में होती है और यथावसर वे खुद भी लम्बे-लम्बे विचार-कथनों के साथ कहानी को दिशा देते चलते हैं। लेकिन देखा जाय तो उत्तरोतर उनकी कहानियों में यह लेखकीय हस्तक्षेप घटता गया है और शैली विवरणात्मक के स्थान पर सांकेतिक तथा संवादात्मक होती गई हैं। प्रेमचंद ने कहा भी है कि कहानी अब जीवन के बहुत निकट आ गई है । अब उसमें व्याख्या का अंश कम और संवेदना का अंश अधिक रहता है। लेखक को जो कुछ कहना है वह कम से कम शब्दों में कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रों के मनोभावो की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा कर देता है। कहानी का आधार अब घटना नहीं अनुभूति है। मनोवैज्ञानिक सत्य और अनुभूति पर आधारित कहानी की दृष्टि से 'मनोवृत्ति' की बनावट उत्कृष्ट और सांकेतिक होने के साथ-साथ गहन रूप से विमर्शात्मक भी है।

यह कहानी उस दौर में लिखी गई जब प्रेमचंद स्वयं स्त्री विषयक समस्याओं को लेकर सुधारवादी सोच से आगे निकल गये थे और उन्हें लगने लगा था कि सुधारवाद का रास्ता घूमफिर कर उसी सामंती पुरुषवर्चस्वी परिधि में पहुंचता है। यह वह समय था जब प्रेमचंद समाधानों से अधिक सवालों से घिरे हुए थे और किसी सीधे-साधे रास्ते से किसी समाधान तक नहीं पहुँचना चाहते थे। इसलिए इस कहानी में प्रेमचंद ने कोई समाधान देने की बजाय एक परिस्थिति का सृजन करके यह प्रश्न उठाया है पार्क में सोई स्त्री यदि विक्टोरियायी नैतिकता और भारतीय स्त्री की पारम्परिक छवि का अतिक्रमण करके कोई अपराध करती है तो क्या ऐसी नैतिकता को मान्य ठहराया जाना चाहिए अथवा नहीं? प्रेमचंद जिस वक्त में यह कहानी लिख रहे थे उस वक्त तक वे स्वयं स्त्री की यौनिक पवित्रता और पतिव्रत शुचिता के कायल थे और किसी भी तरह से किसी स्त्री के कौमार्य अथवा यौनिक शुचिता को खण्डित करने की कोशिश करने वाले विचारों के विरूद्ध थे। प्रेमचंद ने इस कहानी में विभिन्न पात्रों के संवादों के माध्यम से स्त्री की आजादी और उसे बंधित करने वाले पितृसत्तात्मक मूल्यों की टकराहट का जो वातावरण रच दिया है वह कहानी को न केवल विमर्शात्मक बनाता है बल्कि विक्टोरियायी मूल्यों के टूटने की

तरफ संकेत भी करता है। इस कहानी में प्रेमचंद ने मर्दवादी विक्टोरियायी नैतिकता पर सवाल उठाने के लिए कुछ संकेत छोड़ दिये हैं।

यह कहानी जब लिखी गई थी उस समय तक विक्टोरियायी नैतिकता का ज्वार कम जरूर होने लगा था लेकिन औपनिवेशिक भारत में उसका वर्चस्व अभी अपनी प्रबलता के साथ कायम था। विक्टोरियायी नैतिकता वाले समाज में स्त्री की शोभा विवाहित होकर घर बसाने में मानी जाती थी। विवाह के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं था। एक स्त्री अपने पति के संरक्षण में ही अपनी पहचान हासिल कर सकती थी। विक्टोरियायी समाज में स्त्री को स्वतंत्र रूप से कोई काम करने की अनुमति नहीं थी। पुरुषसत्तामक विक्टोरियायी समाज स्त्री को घर परिवार विवाह पति और बच्चों तक सीमित करता था। यह समाज ऐसी धारणा को जन्म देता था कि स्त्री का जीवन बेटी पत्नी और माँ बन कर ही सार्थक हो सकता है। इस काल में स्त्रियों का अकेले बाहर निकलना या घूमना मना था। बाहर निकलते समय पति अथवा परिवार के किसी सदस्य का साथ में होना अनिवार्य था। माना जाता था कि स्त्रियों को घर में रहना ही शोभा देता है। घर में रह कर सिलाई कढ़ाई करना, बच्चों की देख भाल करना और महमानों का खयाल रखना ही स्त्रियों का धर्म माना जाता था। कहा जाता है कि उन्नीसवीं सदी वस्त्र सभ्यता की सदी थी। इस सदी में वस्त्रों से शरीर को ढकने पर ज्यादा जोर रहा है। वर्टैंड रसेल ने लिखा है कि विक्टोरियायी सदी में स्त्री के पैर का अंगूठा भी दिखता था तो बिजली दौड़ जाती थी। शालीनता और अशालीनता, नैतिकता और अनैतिकता के सारे प्रश्न स्त्री देह पर ही लागू होते थे। उसकी देह के सामने उसके मन, संवेदना और आत्मा का कोई मोल न था। हमारा समाज, जिसमें स्त्रियां भी शामिल होती हैं, केवल स्त्री देह के लिए कड़े उसूल तय करता था। इन उसूलो का जाने या अनजाने किसी भी तरह से अतिक्रमण करना अशलीन और अशलील हरकत मान लिया जाता था। वैवाहिक जीवन की मर्यादाओं का उल्लंधन करने वाली और अपनी यौनिक पवित्रता से च्युत स्त्री को गिरी हुई स्त्री माना जाता था। और अपनी मर्यादा से गिरते ही स्त्री वेश्या तुल्य मान ली जाती थी।

विक्टोरियायी नैकिता के इस कठोर बंधन के परिप्रेक्ष्य में 'मनोवृत्ति' कहानी का पाठ करें तो देखा जा सकता है कि विक्टोरियायी मान्यताओं के तले जी रहे समाज में अगर कोई स्त्री अनजाने ही इस मर्यादा का उल्लंघन कर देती है तो समाज में कैसा भूचाल आ जाता है।

7.4 'मनोवृत्ति' कहानी का कथा-संक्षेप और विवेचन

प्रेमचंद की स्त्री विषयक पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में इस कहानी का शिल्प अत्यंत सुगठित,सांकेतिक और विमर्शपरक होने के साथ-साथ अपने संदेशों में अपेक्षाकृत अधिक नवीन है। इसमें वर्णन करने लायक न तो कोई स्थूल कथानक है न पूर्वानुमान करने योग्य कोई निष्कर्ष और न कोई ऐसा पात्र जिसके बारे में कोई स्पष्ट राय निर्मित की जा सके। न कोई परिणति न चरम सीमा न कोई समप्रेश्य और न ही भावुकता। आशय यह कि यह एक ऐसी यथार्थवादी कहानी है जिसे कहानी की सम्पूर्ण संरचना के भीतर से ही समझा जा सकता है। अतः इसका कथासार बताना कहानी के मंतव्य को जोखिम में डालना हो सकता है। फिर भी कहानी का स्थूल सार कुछ इस प्रकार है कि प्रातः काल एक सुंदर युवती एक पार्क में बेंच पर सोई देखी गई। युवतियां पार्क में हवा खाने जाती हैं। मगर कोई युवती इस तरह पार्क के बेंच पर सोये तो यह गैर मामूली बात है। पार्क में बूढ़े जवान और स्त्रियां टहल रहे थे। टहलने वाले लोग बेंच पर सोई हुई सुंदरी को देख कर एक क्षण के लिए ठिठक जाते हैं,एक नजर वह दृश्य देखते हैं और चले जाते हैं– युवक रहस्य

भाव से मुसकराते हुए, वृद्धजन चिंता भाव से सिर हिलाते हुए और युवतियां लज्जा से आंखें नीचे किए हुए।

युवती सुंदर है और किसी कुलीन परिवार की प्रतीत होती है। उसके मांग में सिंदूर है इसलिए वह विवाहिता भी है। सुदंर विवाहिता और युवती होने कारण विक्टोरियायी नैतिकता के अनुसार उसे अपने घर में होना चाहिये या अगर पार्क में है तो अपने पति, पिता, माँ या सास के साथ होना चाहिए था। लेकिन ऐसा न करके वह सारी वैवाहिक मर्यादाओं और शालीनता को ताक पर रखकर अगर किसी पार्क में अकेले बेसुध सोई हुई मिले तो स्त्री की मर्यादा की दृष्टि से निश्चय ही यह एक गैरमामूली बात है। ऐसा अस्वाभाविक व्यवहार उस स्त्री के बारे में तरह-तरह के अनुमान के लिए उकसाता है।

पार्क में टहलने वाले युवाओं, वृद्धों और महिलाओं की जिज्ञासा यह है कि युवती अगर किसी कुलीन परिवार से सम्बन्धित है तो वह इस तरह पार्क की बेंच पर क्योंकर और किन परिस्थितियों में अकेली सोई है। किसी कुलीन परिवार की वधू का इस तरह किसी पार्क में सोया हुआ पाया जाना चूंकि एक असम्भव सी बात है इसलिए बहुत सम्भव है कि यह किसी कुलीन परिवार की न होकर कोई वेश्या हो। या यदि वेश्या न भी हुई नाराज होकर घर से निकली हुई है तो भी यह स्त्री वेश्या नहीं तो अशालीन अवश्य है जो यहां पार्क में लोगों को अपने आकर्षण पाश में फंसाने के लिए अपने रूप और यौवन का प्रदर्शन कर रही है।

चाहे वेश्या हो या कुल वधू, मूल बात यह है कि वह युवती है और एक युवती का पार्क में इस तरह बेशर्म की तरह सोया होना उचित नहीं है। औचित्य और अनौचित्य का यह प्रश्न दरअसल वह ऐतिहासिक प्रश्न है जो हमारी पितृसत्तात्मक भारतीय संस्कृति में एक स्त्री के आचरण से सम्बन्धित है। स्त्रियों पर आयद आचरण-व्यवहार का यह रूप भारतीय देशकाल की विभिन्न परिस्थितियों के बीच आज भी कायम है। हैरत की बात यह है कि एक युवती ने एक पार्क में इस तरह खुले आम सो कर स्त्रियों के आचरण पर लागू निषेधाज्ञाओं का उल्लंधन कर दिया है जो किसी भी रूप में क्षम्य नहीं है।

प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से विक्टोरियायी नैतिकता पर सवाल उठाने के लिए पार्क में सोई स्त्री को बहाना बनाते हैं और यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि किस तरह हमारी सामाजिक सांस्कृतिक धारणाओं में विक्टोरियायी मूल्यबोध और नैतिकता जड़ी भूत है और हम उसी मनोवृत्ति के तहत एक स्त्री के चरित्र के बारे में अनुमान लगा रहे हैं। इस कहानी में बसंत और हाशिम दो युवक हैं। इन युवको की प्रतिक्रिया यह है कि यह स्त्री जिस तरह बेशर्मी से बेंच पर सोई है, वैसी बेशर्मी तो वेश्या भी नहीं करती।

हासिम और बसंत के संवादों में वेश्या और कुलवधू में फर्क को लेकर बहस है। यह बहस अंततः यहां आ पहुंचती है कि ''कुलवधू अगर पार्क में आकर सोए,तो इसका इसके सिवा कोई अर्थ नहीं कि वह आकर्षित करना चाहती है, और यह वेश्या मनोवृत्ति है।'' एक युवा स्त्री जो किसी कारण से आचरणगत बंदिशों और शालीनता के तथाकथित संस्कारों का ताना बाना तोड़ कर थोड़ी देर के लिए खुलकर जीना चाहती है जो वह उस जमाने के युवा वर्ग के लिए भी स्वीकार्य न था। इससे उस समाज की सांस्कृतिक जकड़न और नैतिक अंधता का पता चलता है।

कहानी के दूसरे दृश्य में दो वृद्ध हैं जो उस युवती के इस तरह सोये होने पर अपनी प्रतिक्रियायें दे रहे हैं। वृद्धों की बातचीत में भी शिष्टता का सवाल उठता है और इसी आधार पर उस युवती को वेश्या साबित करने की चेष्टाएं होती हैं। बूढों की चर्चा में नए

जमाने में जिंदगी की बहार को लेकर जहां शिकायत है वहीं यह दुख भी कि इस जमाने का लुत्फ उठाने के लिए वे जवान न रहे। इस दृश्य में सोई हुई स्त्री के अंगों के खुले होने का जिक्र है। गर्दन खुले हुए हैं। केश लहरा रहे हैं। अंग विन्यास दिख रहे हैं। यह सारा का सारा दृश्य उन्हें आमंत्रित करता हुआ लगता है। वृद्धों में प्रेम का संचार होता है और वे उस स्त्री से अपने सम्बन्ध के बारे में कल्पनाएं करते हुए भीतर गुदगुदी अनुभव करते हैं। इस दृश्य में वृद्धों की दमित आकांक्षाओं और कुंठाओं को प्रकट किया गया है। वृद्धों की चर्चा से स्पष्ट है के वे खुलापन का आनन्द तो चाहते हैं मगर पुराने आदर्शो और नैतिकता से बाहर निकलने का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है। इस दृश्य में स्त्री मात्र को यौनांग की तरह देखने की पुरुष मानसिकता का वर्णन प्रेमचंद नें बहुत बढ़िया ढंग से किया है। स्त्री जहां अकेले और तथाकथित अशालीन दशा में दिखी नहीं कि पुरुषों की कामग्रंथि कुलबुलाने लगती है। वृद्ध हो चाहे युवा, पुरुष मानसिकता सबमें एक जैसी होती है।

तीसरे दृश्य में दो स्त्रियों की प्रतिक्रियाओं का वर्णन है। एक स्त्री वृद्धा है जबकि दूसरी नौयौवना। दोनों एक साथ पार्क में हवा खाने कार से आई हैं। दोनों सम्भ्रांत कुलीन और शिक्षित हैं। मगर उस सोई हुई स्त्री को देख कर दोनों की आरम्भिक प्रतिक्रियाएं उसी तरह की हैं जैसा कि पुरुषों की। इस तरह आजाद तरीके से सोई हुई स्त्री को देख कर वृद्धा कहती है कि इसीलिए मर्द स्त्रियों को आजादी नहीं देना चाहते हैं। आजादी मिली नहीं कि वे बिगड़ने लगती हैं। दोनों स्त्रियों के अनुसार यह स्त्री जो पार्क में सोई है, पूरे स्त्री समाज को लज्जित कर रही है। ऐसा करना आपत्तिजनक है। यहां प्रेमचंद स्त्री की आजादी की सीमाओं की व्याख्या करते हैं। उनकी स्त्रियाँ कहती हैं कि वे स्त्री स्वतंत्रता का समर्थन अवश्य करती हैं लेकिन किसी स्त्री को आजादी के नाम पर अपनी स्त्री सुलभ गौरवशीलता और सलज्जता का त्याग कदापि नहीं करना चाहिए। सिगरेट पीना, आधे अंग का जम्पर पहनना और खुले में अकेले घूमना स्त्री को शोभा नहीं देता। आजादी के नाम पर इस तरह का प्रदर्शन नंगापन है। पुरुष भी अपनी आजादी का इस तरह दुरूपयोग नहीं करते। इस दृश्य में प्रेमचंद स्त्री और पुरुष दोनों की स्वतंत्रता की मनोवृत्ति की तुलना करते हुए स्त्रियों के मुंह से कहलाते हैं कि पुरुष स्वाधीन है और अपने दिल में समझता है कि मैं स्वाधीन हूं। वह स्वाधीनता का स्वांग नहीं भरता। इसके विपरीत स्त्री समझती है कि वह स्वाधीन नहीं है, इसलिए वह स्वाधीनता का ढोंग रचती है। यह स्वांग यह ढोंग स्त्री की कमजोरी का लक्षण है। प्रदर्शन की मनोवृत्ति इसी कमजोरी का परिणाम है। दोनों स्त्रियों में प्रेमचंद स्त्री के ढंकने और खुलेपन पर बहस कराते हैं। वृद्धा के यह कहने पर कि एक स्त्री अपने को छिपाकर ही पुरुष को नचा सकती है, युवती कहती है कि पुरुषों को आकर्षित करने की जिम्मेदारी स्त्री को ही क्यों उठानी चाहिए। यह काम पुरुष ही क्यों नहीं करता।

इन्हीं बहस मुबाहसों के बीच वृद्धा अचानक बिफर कर कहती है कि इतने आदमी आ जा रहे हैं, और यह निर्लज्ज टांग फेलाए पड़ी है। मैं तो कहती हूं कि यह रात भर यहीं रही है। इतने में युवती हाथ पकड़ कर उसे जगा देती है और सारे सवालों अनुमानों से पर्दा उठ जाता है। यह खुलासा होते ही कि उसे चक्कर आता है और वह हवा खाने आई थी युवाओं, वृद्धों और स्त्रियों के सारे आरोंपो और अनुमानों पर से पर्दा उठ जाता है। यह ज्ञात होते ही कि वह शहर के प्रतिष्ठित डॉ श्यामनाथ की वधू है, उस युवती के प्रति लोगों का रवैया तुरंत बदल जाता है और लोग उसे सम्मान की नजर से देखने लगते हैं। लोगों के यह पूछने पर कि वह अकेले पार्क में क्यों आई किसी को साथ क्यों नहीं ले लिया, वह साफ जवाब देती है कि इसकी कोई जरूरत न थी। उस युवती के इस उत्तर के साथ ही कहानी समाप्त हो जाती है– इस ध्वनि के साथ कि अब स्त्रियां किसी

पति या पुत्र या माँ-बाप के बिना अकेले भी बाहर निकलने का साहस करने लगी है। स्वतंत्रता का यह पहला पाठ स्त्रियों में जागरण का संदेश है।

प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से स्त्री की आजादी और पुरुषों से बराबरी का प्रश्न उठाने के साथ ही विक्टोरियायी नैतिकता पर भी प्रहार किया है। और दूसरी बात यह कि यह कहानी बताती है कि जिस समय में यह कहानी लिखी गई थी उस समय विक्टोरियायी पाबंदी पर सवाल उठने शुरू हो गये थे और स्त्रियों की चेतना में उल्लेखनीय बदलाव आना शुरू हो गया था।

7.5 पुरुष मनोवृत्ति और भारतीय स्त्री

नारी जाति का इतिहास पुरुष वर्चस्व के तले निरंतर दबते चले जाने का इतिहास है। पुरुषों ने उसे सदा अपनी अधीनता में रखने का प्रयास किया है। धर्मग्रंथों में स्त्री को पुरूष के बराबर का दर्जा दिए जाने का चाहे जितना उदाहरण मौजूद हो वास्तविकता यही है कि स्त्री को समाज में कभी भी पुरुष के बराबर का अधिकार नहीं मिला।इसके पीछे पहला कारण तो यह कि अपनी शारीरिक सामर्थ्य और ताकत से पुरुषों ने स्त्री को हमेशा अपनी अधीनता में रहने और कम महत्व के काम करने के लिए विवश किया और दूसरी बात यह कि स्त्री को वह निजी सम्पत्ति की तरह देखता था। पुरुषों ने नारी जाति को कभी अपनी शक्तियों का विकास करने और पुरुषों की बराबरी में आकर काम करने का मौका ही नहीं दिया। स्त्रियों की काबिलियत पर अविश्वास करना और उनके चरित्र को लेकर हमेशा आशंकित रहना पुरुषों की मनोवृत्ति रही है। स्त्री को स्वाधीनता देने और सफलता प्राप्त करने का अवसर देने में पुरुषों का स्त्री जाति के प्रति अविश्वास सबसे आड़े आता था। पुरुषों ने स्त्रियों के चरित्र को लेकर हमेशा ही शक किया है। नारी जाति के प्रति पुरुषों की इस मनोवृत्ति ने स्त्रियों का बहुत नुकसान किया है। पर्दा प्रथा इसी शर्मनाक अविश्वास की मनोवृत्ति का परिणाम है। यह पर्दाप्रथा हालांकि प्रेमचंद के समय में ही टूटने लगा था और मध्यम वर्गीय शिक्षित स्त्रियां बिना पर्दा के ही बाहर निकलने लगी थीं लेकिन इस प्रथा ने स्त्रियों की सांस्कृतिक मानसिकता में इस कदर अपना घर बना लिया था कि स्वाधीन होने के बाद भी स्त्रियां घरों से अकेले निकलने मे भय का अनुभव करती थीं। पर्दा से मुक्त होने के बाद भी स्त्रियों में मानसिक स्वाधीनता की चेतना अभी नहीं आई है। आज भी स्त्रियां अपने रिश्तेदारों और परिवारवालों के बीच एक किस्म का संकोच और पर्दा करते देखी जा सकती हैं। इससे पता चलता है कि वे अभी पूरी तरह मानसिक रूप से स्वाधीनता की चेतना का वरण नहीं कर सकी हैं। सच तो यह है कि पर्दे की गुलामी से स्त्रियां तभी मुक्त हो सकेंगी जब वे अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आर्थिक उन्नति भी कर लेगी।

आज स्थिति में काफी बदलाव आया है। लेकिन मनोवृत्ति के धरातल पर पुरुष अभी भी स्त्रियों को पुरानी परिपाटी से बाहर निकलते देखना नहीं चाहता है। यही कारण है कि आज स्त्रियों पर अत्याचार की घटनाएं और अधिक बढ़ रही हैं। मनोवृत्ति कहानी में भी पुरुष की सोच में स्त्री के प्रति घनघोर अविश्वास की मनोवृत्ति देखने को मिलती है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियां भी पुरुष मानसिकता से ग्रस्त होती हैं। पुरुष मनोवृत्ति का शिकार होने के कारण वे स्वयं भी उसी तरह से सोचती हैं जैसे कि एक पुरुष सोचता है। यही कारण है कि मनोवृत्ति कहानी में युवाओं और वृद्धों से लेकर स्त्रियां तक पार्क में सोई हुई युवती को बेशर्म और वेश्या कहने से नहीं चूकतीं।

प्रेमचंद ने इस कहानी में पुरुष मनोवृत्ति और स्त्री नैतिकता के नाम पर स्त्रियों पर आयद किये गये प्रतिबंधों का बड़े कौशल के साथ चित्रण किया है। चुस्त संवादों में स्त्री की स्वाधीनता से सम्बन्धित तमाम पहलुओं को जेरे बहस उठा कर प्रेमचंद ने जिस खूबी से नारीवादी विमर्श का भारतीय परिप्रेक्ष्य रचा है वह इस कहानी को महत्वपूर्ण और प्रासंगिक बनाता है। प्रेमचंद ने स्त्री विषयक बहुत सी कहानियां लिखी हैं लेकिन इस कहानी में चिंतन और बहस का स्तर जितना आधुनिक संदर्भ लिए हुए उतना उनकी अन्य किसी कहानी में देखने को नहीं मिलता।

7.6 निष्कर्ष

प्रेमचंद की कहानियां प्रायः संदेशपरक और निष्कर्षात्मक होती हैं। हर कहानी किसी न किसी निहित लक्ष्य से लिखी गई होने के कारण अंत आते-आते अपने निष्कर्ष स्पष्ट कर देती है। लेकिन उत्तरोत्तर उनकी कहानियों में यह निष्कर्षात्मकता कम होती गई है और उसकी जगह सांकेतिकता ने ले लिया है। 'मनोवृत्ति' भी एक ऐसी ही सांकेतिक कहानी है। इस कहानी में न कोई नैरेटर है न कोई कथानक और न हीं कोई आदि मध्य और अंत। चुस्त सवादों में लिखी गई इस कहानी का मूल भाव बस इतना है कि पार्क में सुबह-सुबह बेखौफ सोई हुई युवती स्त्री की शालीन छवि के विपरीत आचरण से सबको स्तब्ध कर देती है। स्त्री सुलभ आचरण के विपरीत उसका पार्क में इस तरह सोया होना भारतीय संस्कृति में मानो भूचाल ला देता है और सब लोग अपने अपने ढंग से उसके चरित्र पर लांछन लगाने लगते हैं। इस कहानी का अंतिम वाक्य सबसे महत्वपूर्ण है। वह युवती बिना किसी पुरुष का साथ लिए पार्क में अकेले आई थी और लोगों के पूछने पर कि अकेले क्यों आई, वह किसी को साथ लाने की जरूरत से इनकार कर देती है। यह इनकार स्त्री स्वाधीनता के संघर्ष के इतिहास में इतना बड़ा इनकार है जो शायद प्रेमचंद के माध्यम से हिन्दी कहानी के पटल पर और हिन्दुस्तान की जमीन पर पहली बार घट रहा था। इस इनकार ने ही बाद में चलकर स्त्री स्वाधीनता को सच्ची जमीन पर स्थापित होने का अवसर दिया।

7.7 अभ्यास

1. प्रेमचंद की कहानियों में व्यक्त नारी विषयक विचारों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

2. प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में पुरुषों की तुलना में स्त्री को अधिक जागरूक और साहसी चित्रित किया है। यह कथन कहां तक संगत है। सोदाहरण अपने विचार लिखिए।

3. मनोवृत्ति कहानी के संदर्भ में स्त्री शालीनता की व्याख्या कीजिए।

4. 'मनोवृत्ति' कहानी के माध्यम से प्रेमचंद क्या संदेश देना चाहते हैं।

5. पार्क में सोई हुई स्त्री ने इस तरह अकेले उन्मुक्त भाव से बेंच पर सोकर स्त्री का शालीन छवि को कलंकित किया है। आप इस कथन से कहां तक सहमत/असहमत हैं।

इकाई 8 "बूढ़ी काकी" : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मनोवैज्ञानिकता के विभिन्न स्तर

8.2.1 वृद्धावस्था की मनोवैज्ञानिकता

8.2.2 अन्य पात्रों की मनोवैज्ञानिकता

8.3 सादृश्यों के सापेक्ष यथार्थ-चित्रण

8.4 सूत्र वाक्य, व्यंग्य और विद्रूप

8.5 सामाजिक सरोकार

8.6 धार्मिक मान्यता

8.6.1 पाप-पुण्य की चिंता

8.6.2 रूपा का हृदय-परिवर्तन

8.7 प्रेमचंद की नारी से संबंधित दृष्टि

8.8 भाषा और शब्दावली

8.9 सारांश

8.10 अभ्यास

8.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के कहानी से संबंधित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' से संबंधित खंड - 2 की चौथी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रेमचंद की परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में स्त्री से संबंधित धारणा समझ सकेंगे। प्रस्तुत इकाई में आप प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'बूढ़ी काकी' का अध्ययन करेंगे। इस कहानी में लगभग सौ साल पहले के औपनिवेशिक भारत के एक ब्राह्मण परिवार का दृश्यांकन किया गया है, जिससे आज के भारत की तस्वीर भी सजीव हो उठती है। इस कहानी का अध्ययन करने के उपरांत आप—

- प्रेमचंद की कहानी-कला में प्रयुक्त होने वाले मनोवैज्ञानिक तथ्यों की गहराई को समझ सकेंगे और विभिन्न पात्रों की मानसिकता को महसूस कर सकेंगे/सकेंगी;
- यथार्थ के धरातल पर निर्मित कथानक के माध्यम से मनोरंजन के साथ-साथ समाज-सुधार की भावना का प्रकाशन देख सकेंगे/सकेंगी;
- मार्मिक दृश्यों के माध्यम से संवेदना, करुणा एवं मानवता के नकारात्मक व सकारात्मक पहलुओं का स्पर्श कर सकेंगे/सकेंगी;
- पारिवारिक और सामाजिक विद्रूपताओं के बीच नारी की स्थिति तथा धर्म की क्रियाशीलता की परिणति को समझ सकेंगे/सकेंगी; और

- प्रेमचंद की भाषा और शब्दों की जादूगरी के आलोक में उनकी व्यंग्यात्मक छटाओं के दर्शन कर सकेंगे/सकेंगी।

8.1 प्रस्तावना

नवाब (बचपन का पुकारू नाम)/नवाब राय (उर्दू में लेखन का नाम)/धनपत राय (औपचारिक नाम)/ प्रेमचंद/मुंशी प्रेमचंद को 'कथा-सम्राट' कहा जाता है। उनके कथा-साहित्य में प्रेमचंद-युग का समकालीन यथार्थ झाँकता है। प्रेमचंद-युग से पूर्व कथा-साहित्य कल्पना-लोक की चीज हुआ करती थी, जिसमें तिलिस्म, जासूसी, ऐयारी आदि की चमत्कारों से भरी दुनिया जीती-जागती दिखाई देती थी; जिसमें फुटकर रूप में ही मध्यवर्गीय पात्रों का चित्रण आदर्शवादी ढंग से किया गया है। प्रेमचंद के कथा-साहित्य में विचारधाराएँ, राष्ट्रीय चेतना, किसानों का जीवन, नारी-जीवन, दलित चेतना, धार्मिक-सांप्रदायिक सोच, घर-परिवार-समाज आदि पूरे रव के साथ उपस्थित होकर कथ्य की विविधता को दर्शाते हैं। सामान्य मानव, किंतु बड़े कहानीकार प्रेमचंद की कहानियों में मध्यवर्ग के विभिन्न पहलुओं, यथा : समाज-परिवार के बीच नारी की स्थिति, आर्थिक स्थिति, नैतिक दुर्बलता, अवसरवादिता, मूल्यों में गिरावट, चारित्रिक गिरावट, वैचारिक अस्थिरता आदि के अनगिनत चित्र टंकित हैं।

01 मई 1903 ई. में बनारस के उर्दू पत्र 'आवाज़-ए-ख़ल्क' में ('धनपत राय' के नाम से) प्रकाशित 'ओलिवर क्रॉमवेल' नामक लेख के साथ ही प्रेमचंद का लेखकीय जीवन प्रारंभ हुआ। 1905 ई. में कानपुर पहुँचकर उन्होंने 'नवाब राय' नाम से लिखना शुरू किया। अमृत राय (प्रेमचंद के दूसरे पुत्र) के कथनानुसार 1907 ई. में प्रकाशित 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' प्रेमचंद की पहली उर्दू कहानी है, जबकि अन्य विद्वानों के अनुसार 1908 ई. में 'ज़माना' में छपी 'इश्के दुनिया और हुब्बे वतन' उनकी पहली उर्दू कहानी है। सत्य जो भी हो, किंतु यह सच है कि इन दोनों ही कहानियों का विषय 'देश की आजादी' है। प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'सौत' 'सरस्वती' के 1915 ई. के दिसंबर अंक में छपी थी।

प्रेमचंद के साहित्य में भरपूर विविधता है। 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'गबन', 'गोदान' जैसे उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, निबंध, अनूदित साहित्य, बाल साहित्य, पत्र साहित्य की रचना की है। उनकी तीन सौ से ऊपर प्रकाशित कहानियों में 'बूढ़ी काकी' एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। 'बूढ़ी काकी' का पहला प्रकाशन इसी नाम से उर्दू की मासिक पत्रिका 'कहकशाँ' में सन् 1920 की जुलाई में हुआ था। 'श्री शारदा' में यह हिंदी कहानी के अवतार में जनवरी, 1921 में प्रकाशित हुई। अमृत राय द्वारा संपादित 'मानसरोवर' के आठवें और अंतिम भाग में संगृहीत यह कहानी प्रेमचंद की भारतीय नारी की विवशता व नियति का मनोवैज्ञानिक चित्रण करती है।

कहानी में अनाम विधवा ब्राह्मणी (बूढ़ी काकी) अपनी युवा संतानों को खोने के बाद बुढ़ापे में सहारे के लिए अपनी डेढ़-दो सौ रुपए वार्षिक आय वाली संपत्ति अपने एक मात्र भतीजे बुद्धिराम के नाम लिख देती है। बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा अपने वादे, दायित्व और नैतिकता को भूलकर बूढ़ी काकी पर अत्याचार करने लगते हैं; उन्हें प्रताड़ित करते हैं और पेट भर भोजन भी नहीं देते हैं। बुद्धिराम के दोनों लड़के भी माँ-बाप की देखा-देखी बूढ़ी काकी को चिढ़ाते और सताते रहते हैं, जबकि भाइयों के भय से बुद्धिराम की नन्ही लड़की लाडली (लाड़ली) बूढ़ी काकी की शरण लेती है एवं उनसे लगाव रखने लगती है। बूढ़ी काकी के पास रोने के अलावा और कोई चारा नहीं होता है। बुद्धिराम के बड़े पुत्र मुखराम का तिलक-उत्सव होता है, तो बूढ़ी काकी के मन में आस जगती है कि एक लंबे अंतराल

के बाद उन्हें स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होगा। क्षुधा-पीड़ित व आँखों-हाथों-पैरों से लाचार वृद्धा को बालपने जैसी आतुरता दिखाने के कारण एक बार रूपा और दूसरी बार बुद्धिराम द्वारा अपमानित होना पड़ता है। वृद्ध-लाचार शरीर दूसरा वार नहीं झेल पाता है। देर रात सब लोगों के सोने के बाद लाडली चुपके-से वृद्धा के पास अपने हिस्से की पूड़ियाँ (जिन्हें वह सबकी नजरें बचाकर अपनी गुड़िया की पिटारी में भर लेती है) लेकर जाती है। तब तक बूढ़ी काकी को होश आ चुका होता है और वे भूख, निराशा एवं ग्लानि से तड़प रही होती हैं। लाडली के हिस्से की पूड़ियों से वृद्धा की क्षुधा शांत नहीं होती है और वे लाडली से आग्रह करके उसी के सहारे आँगन में पहुँचकर मेहमानों द्वारा पत्तलों में छोड़ी गई जूठन से अपनी भूख मिटाने लगती हैं। ठीक इसी समय रूपा की आँख खुलती है। आँगन का हृदयविदारक मार्मिक दृश्य देखकर रूपा का हृदय शोक, करुणा और अधर्म का भागी होने के भय से भर उठता है। उसका हृदय परिवर्तित होता है और तब वह बूढ़ी काकी को आदरपूर्वक भोजन कराती है।

8.2 मनोवैज्ञानिकता के विभिन्न स्तर

प्रेमचंद ने मनुष्य के स्वभाव और उसके द्वारा निर्मित समाज का सूक्ष्म निरीक्षण किया था, इसीलिए उनको व्यक्ति और समाज के मनोविज्ञान को शब्दों में ढालने में महारत हासिल थी। उनकी कथाओं के पात्र कठपुतलियों की तरह उनके मंतव्य-संवेदना के सूत्रों से बँधकर पाठकों के समक्ष वास्तविक जीता-जागता आचरण करते हैं। 'बूढ़ी काकी' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसमें एक ओर वृद्धावस्था का मनोविज्ञान क्रियाशील है, तो दूसरी ओर बालपन की मनोवैज्ञानिकता के चंचल और उत्तरदायित्व से पूर्ण दोनों ही पहलू काम कर रहे हैं। छिट-फुट रूप में समाज-मनोविज्ञान भी अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। यह तय है कि 'बूढ़ी काकी' में प्रेमचंद की मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि कहानी-कला के विकास की दृष्टि के धरातल पर कार्य कर रही है। 'बूढ़ी काकी' में प्रेमचंद की मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि को हम दो स्तरों में बाँट सकते हैं– पहला, वृद्धावस्था की मनोवैज्ञानिकता और दूसरा, अन्य पात्रों की मनोवैज्ञानिकता।

8.2.1 वृद्धावस्था की मनोवैज्ञानिकता

यह सच है कि वृद्धावस्था में व्यक्ति के क्रियाकलाप बच्चों से मेल खाने लगते हैं। इंद्रियों और शरीर के अंगों के शिथिल होने के साथ ही कई तरह की मजबुरियों का शिकार मनुष्य दूसरों पर निर्भर होने को विवश हो जाता है। प्रेमचंद की संवेदना निश्चित रूप से भारतीय समाज में नारी की स्थिति से जुड़ी हुई है। विधवा, असहाय और वृद्ध स्त्रियों के प्रति वे अधिक संवेदनशील हैं। 'ईदगाह' की वृद्धा का चरित्र इसका प्रमाण है। 'ईदगाह' और 'बूढ़ी काकी' की वृद्धाओं में भले ही कोई समानता न हो, फिर भी वे वृद्धावस्था की मनोवैज्ञानिकता के दो सिरे निर्मित करती हैं। बूढ़ी काकी के चरित्र को कहानीकार ने इस प्रकार से उकेरा है कि कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। सांस्कारिक विकार की पूरी झलक कहानी को चरित्र प्रधान बना देती है और शिल्पगत स्तर पर 'नई कहानी' के दौर की पृष्ठभूमि को निर्मित करने का श्रेय पा जाती है। 'चीफ की दावत' जैसी कहानियों में 'बूढ़ी काकी' के शिल्प का अनुकरण स्पष्ट दिखाई देता है। देखा जाए तो कहानी का कथानक कुछ नहीं है, केवल वृद्धा के चरित्र के कारण कथ्य निर्मित हो रहा है। यहाँ डॉ. नामवर सिंह का एक कथन तर्क संगत प्रतीत होता है– ''कहानी का रूप कहानी के भीतर ही बदला जा सकता है, जैसा कि समय-समय पर महान कहानीकारों ने किया है। कहानी का रूप प्रेमचंद ने कब नहीं बदला? 'पूस की रात', 'कफन', 'ईदगाह', 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'सवा सेर गेहूँ'– इन कहानियों का रूप एक-सा नहीं है और न एकदम

पुराना ही है, लेकिन फिर भी ये कहानी हैं।'' (कहानी : नई कहानी, 'नई कहानी : सफलता और सार्थकता', पृष्ठ 21-22)।

बूढ़ी काकी जैसे चरित्र अपने समाज में भरे पड़े हैं। अपना सर्वस्व निछावर कर बूढ़ी काकी अपने भतीजे बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा से केवल पेट भर भोजन की अपेक्षा करती है, जो उसे नहीं मिलता है। तिरस्कृत और उपेक्षित होने के कारण ''बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भाँति बैठी हुई थीं। यह स्वाद मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, संभवतः मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगीं। इतनी देर हो गई, कोई भोजन लेकर नहीं आया। मालूम होता है सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया, परंतु अपशकुन के भय से वह रो न सकीं।'' साफ दिख रहा है कि त्रस्त होने के बावजूद बूढ़ी काकी अपने भतीजे एवं उसके परिवार के लिए अमंगल की भावना नहीं पालती हैं। बच्चों के समान अधैर्य और क्षुधा से पीड़ित होने के कारण किए गए कृत्यों के लिए वे स्वयं को ही दोषी ठहराती हैं। यहाँ वृद्धा का संस्कारजन्य कल्याणकारी मनोविज्ञान क्रियाशील है और पूरी कहानी में वृद्धा की विभिन्न मानसिक स्थितियों की छटाओं को निहारते हुए अंत में हम पुनः संस्कारजन्य कल्याणकारी मनोविज्ञान से साक्षात्कार करते हैं - ''भोले-भोले बच्चों की भाँति, जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाते हैं, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थी। उनके एक-एक रोंए से सच्ची सदिच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी स्वर्गीय दृश्य का आनंद लेने में निमग्न थी।'' कहानी का उत्कर्ष यही है। संपूर्ण कहानी वृद्धा की विवशता के इर्द-गिर्द घूमती है और उसकी सोच (मनोविज्ञान) के सहारे ही अंजाम तक पहुँचती है।

8.2.2 अन्य पात्रों की मनोवैज्ञानिकता

'बूढ़ी काकी' कहानी में चार पात्र ऐसे हैं, जिनकी प्रमुख भूमिकाएँ हैं– बूढ़ी काकी, बूढ़ी काकी के भतीजे पंडित बुद्धिराम, पंडित बुद्धिराम की पत्नी श्रीमती रूपा और पंडित बुद्धिराम व श्रीमती रूपा की बेटी लाडली (लाड़ली)। दृश्यों को सजीव और यथार्थ बनाने हेतु अनेक व्यक्तियों (यथा : नाई, कहार, भाट, अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक, गँवार आदि) को कैनवस पर उतारा गया है तथा इन्हीं के सहारे मुख्य पात्रों की मानसिकता को उजागर किया गया है।

पंडित बुद्धिराम की मानसिकता का परिचय प्रेमचंद इस प्रकार देते हैं– ''भतीजे ने सारी संपत्ति लिखाते समय ख़ूब लंबे-चौड़े वादे किए, किंतु वे सब वादे केवल कुली-डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्ज़बाग थे।'' अपनी चाची (काकी) का सब कुछ हथिया लेने के बाद बुद्धिराम की सारी नैतिकता फुर्र हो जाती है और उनकी कृत्रिम सज्जनता, पाखंडपूर्ण भलमनसाहत और निर्दयता पाठकों के समक्ष जाहिर हो जाती है। स्वार्थ की पराकाष्ठा की जीती-जागती मिसाल के रूप में बुद्धिराम के चरित्र के माध्यम से उनके जैसे लोगों के मनोविज्ञान को प्रेमचंद इन शब्दों में समझाते हैं– ''बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी संपत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ। यदि भौतिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता हो, उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती, परंतु विशेष व्यय का भय उनकी सुचेष्टा को दबाए रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते।'' लोलुप और स्वार्थी व्यक्ति अच्छे-बुरे का भेद भूल जाता है और तब भरे समाज में भी वह अपनी क्रूर प्रवृत्ति को दर्शाने लगता है। वह अपने आचरण के कारण अपनी संतानों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को भी नजरंदाज कर देता है। उसको पूरा भान होता है

कि वह जो कुछ कर रहा है, ठीक नहीं कर रहा है, किंतु कुंठा के कारण वह अपने क्रोध के आवेग को रोक पाने में असफल रहता है और गलतियों को दोहराता रहता है। ठीक यही बुद्धिराम के साथ भी घटित हो रहा है। आँगन में भोजन कर रहे मेहमानों के बीच भूखी काकी के आ जाने से उनकी दीन-हीन दशा के अप्रत्याशित रूप से अनावृत हो जाने से बुद्धिराम अपना आपा खो बैठते हैं– ''पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गए।.......... और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेइमान और भगोड़े कर्ज़दार को देखते ही उसका टेंटुआ पकड़ लेता है, उसी तरह लपक कर उन्होंने काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अँधेरी कोठरी में धम से पटक दिया।'' स्पष्ट है कि बुद्धिराम के माध्यम से प्रेमचंद ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर आज के स्वार्थी, लोलुप, पाखंडी और क्रूर चरित्र को उतारा है।

रूपा भी अपने पति के पद-चिह्नों पर चलती है। वह भी काकी की कृपा और वृद्धावस्था को भूलकर खुदगर्जी पर उतर आती है। कथाकार ने घरेलू एवं गृहस्थ महिलाओं की गतिविधियों की गहन छानबीन करके उनके मनोविज्ञान के आधार पर रूपा रूपी पात्र गढ़ा है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक धार्मिक, भीरु और ईश्वर से डरने वाली होती हैं। रूपा स्वभाव से तीव्र भले ही है, किंतु ईश्वर से डरती है, इसीलिए बूढ़ी काकी को रूपा की तीव्रता इतनी नहीं खलती है जितनी कि बुद्धिराम की भलमनसाहत। कहानी में रूपा के स्वभाव की तीव्रता और उसके मनोभवों को दर्शाने वाला एक बिंब इस प्रकार है– ''रूपा उस समय कार्यभार से उद्विग्न हो रही थी।..........। बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुँझलाती थी, कुढ़ती थी, परंतु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में उबल पड़ीं।..........। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठी देखा तो जल गई। क्रोध न रुक सका।..........बोली– ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़?..........। इतनी ठूँसती है न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे, तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाए, परंतु तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाए।'' और जब रूपा अपनी चचेरी सास को झूठे पत्तलों से बीन-बीन कर पूड़ियों के टुकड़े खाते देखती है तो यह बिंब कहानी के अंतर्द्वंद्व के साथ-साथ प्रेमचंद के मनोवैज्ञानिक वर्णन को उत्कर्ष पर पहुँचा देता है एवं कहानी को समापन की ओर मोड़ देता है– ''यह वह दृश्य था, जिसे देखकर देखने वालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानो ज़मीन रुक गई, आसमान चक्कर खा रहा है। संसार पर कोई आपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा और भय से उसकी आँखें भर आईं। इस अधर्म का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन मंडल की ओर हाथ उठाकर कहा– परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो। इस अधर्म का दंड मुझे मत दो, नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जाएगा।'' इस प्रकार कहानीकार बड़े ही कौशल से धर्म-अधर्म की सोच के माध्यम से रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय का भान करवाकर उससे पश्चाताप करवाता है।

लाड़ली के बिना कहानी का उद्देश्य अधूरा ही रह जाता। वस्तुतः बड़े परिवारों में कोई न कोई ऐसा बच्चा होता है, जो अपने भाई-बहनों से त्रस्त होता है और अति संवेदनशील होने के नाते उसका बचपना बड़प्पन में बदल जाता है। लाड़ली की दशा ऐसी ही है। वह अपनी उम्र से बड़ी है और यह उसी का कृत्य है, जिससे रूपा पिघलने को विवश हो जाती है। पूरे परिवार में केवल लाड़ली ही ऐसी है, जिसको काकी से अनुराग है। लाड़ली के दोनों भाई तो अपने माता-पिता का अनुकरण करते हुए काकी को सताते ही रहते हैं। माता-पिता द्वारा काकी को अपमानित किया जाना उसे कतई अच्छा नहीं लगता है। काकी के लिए पिटारी में अपने हिस्से की पूड़ियाँ रखना, माँ-बाप से भय खाना, रात

में काकी के पास जाते हुए सामने की नीम पर हनुमान जी की कल्पना कर डरना और भोलापन बाल मनोविज्ञान के बिंब हैं, जिन्हें कथाकार ने यथास्थान रूपायित किया है।

8.3 सादृश्यों के सापेक्ष यथार्थ-चित्रण

आधुनिक कविता की तरह आधुनिक कहानी में भी बिंबों और प्रतीकों की विशेष भूमिका है। कहानी में बिंब चित्रात्मकता का काम करते हैं। प्रेमचंद ने एक और तकनीक का प्रयोग चित्रात्मकता के लिए किया है, वह है– सादृश्यों के माध्यम से यथार्थ का चित्रण करना। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सादृश्यों के माध्यम से कथा-सम्राट ने न केवल पात्रों के मनोभावों का चित्रण किया है, बल्कि स्वयं के जीवन-दर्शन को भी उजागर किया है। 'बूढ़ी काकी' में प्रयुक्त सादृश्य प्रायः समाज में प्रचलित लोकोक्तियों या फिर प्राकृतिक दृश्यों से आते हैं।

बूढ़ी काकी के भतीजे (बुद्धिराम) के स्वभाव एवं मनोभावों का चित्रण प्रेमचंद इस सादृश्य से करते हैं– ''भतीजे ने सारी संपत्ति लिखाते समय ख़ूब लंबे-चौड़े वादे किए, किंतु वे सब वादे केवल कुली-डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्ज़बाग थे।'' यह एक वाक्य बुद्धिराम की चालाकी, ठगी, अन्याय और स्वार्थपरता की दास्तान कहता है। आज से सौ वर्ष पहले कुली-डिपो की दलाली बहुत गंदा काम था और बुद्धिराम के लिए यह उपाधि किसी गाली से कम नहीं है। इस दुनिया में बुद्धिराम जैसे अनेक लोग कल थे, आज हैं और कल भी रहेंगे।

मनुष्य क्रोध में जानवरों के समान व्यवहार करने लगता है और तब वह सारी मर्यादाओं का उल्लंघन कर डालता है। उसकी पाशविक प्रवृत्ति जाग उठती है। ऐसा ही एक सादृश्य प्रेमचंद रूपा के लिए उपस्थित करते हैं– ''जिस प्रकार मेंढक केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झटक कर बोली– ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़?'' ऐसे अनेक सादृश्य कथ्य के माध्यम से यथार्थ स्थितियों को दृश्यमान करते हैं।

भावनाओं को जब अपनों से ठेस लगती है या भरी सभा में अपने से छोटों से अपमानित होने पर शरीर के स्नायुतंत्र के सारे तंतु ढीले पड़ जाते हैं। बहू (रूपा) द्वारा चचेरी सास (बूढ़ी काकी) का अपमान किए जाने पर ऐसी ही स्थिति से दो-चार होना पड़ता है– ''आवाज़ ऐसी कठोर थी कि हृदय और मष्तिष्क की संपूर्ण शक्तियाँ, संपूर्ण विचार और संपूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गए थे। नदी में जब कगार का कोई वृहद खंड कटकर गिरता है तो आस-पास का जल समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है।'' प्रकृति की तरह मानव भी अपनी संपूर्ण शारीरिक और मानसिक ताकत से विषम परिस्थितियों से उबरने की चेष्टा करता है।

8.4 सूत्र वाक्य, व्यंग्य और विद्रूप

सूत्रों का महत्त्व हर जगह होता है। 'बूढ़ी काकी' कहानी की शुरुआत ही सूत्र वाक्य से होती है– ''बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है।'' यह एक वाक्य संपूर्ण कहानी का सार है। कहानी में आदि से अंत तक बूढ़ी काकी में बच्चों-सी अधीरता, तुरत-फुरत तुष्टि और मासूमियत विद्यमान है। ''फूल हम घर में भी सूँघ सकते हैं, परंतु वाटिका में कुछ और बात होती है''; ''आशारूपी वाटिका लू के एक झोंके में विनष्ट हो गई''; ''संतोष-सेतु जब टूट जाता है तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है''; ''बुढ़ापा तृष्णा

रोग का अंतिम समय है, जब संपूर्ण इच्छाएँ एक ही केंद्र पर आ लगती हैं'' जैसे अनेक वाक्य आलोच्य कहानी की सूत्रात्मकता को उजागर करते हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में शालीन व्यंग्य व्यक्ति और समाज के सापेक्ष किए गए हैं। 'बूढ़ी काकी' कहानी में व्यंग्यात्मक वाक्यों के द्वारा कहानीकार बुद्धिराम और रूपा जैसे चरित्रों के अत्याचार व अन्याय को तो उजागर करता ही है; अहंकार, कृतघ्नता, चाटुकारिता, संवेदनहीनता आदि के चित्र भी खींचता है। कदाचित् क्षुधातुर वृद्धा का जूठन खाना इस कहानी का सबसे संवेदनशील व्यंग्यात्मक दृश्य है– ''दीन, क्षुधातुर, हत्ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन-चुनकर भक्षण करने लगी।..........काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थीं कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ।''

विद्रूपों के द्वारा प्रेमचंद ने सड़ी-गली मान्यताओं, रीति-रिवाजों और आडंबरों को उघाड़ा है तथा उन पर कुठाराघात किया है। 'बूढ़ी काकी' कहानी में भी कहानीकार ने कई स्थलों पर इन सब का चित्रण किया है। बुद्धिराम के लड़के मुखराम के तिलक के अवसर पर एकत्रित मेहमानों के वर्णन में उपहास के अनेक रंग झिलमिलाते हैं। इसी प्रकार आँगन में भोजन कर रहे मेहमानों के दृश्य के अंकन का अंदाज भी बड़ा चुटीला है– ''दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े-लिखे थे, सेवकों के दीर्घाहार पर झुँझला रहे थे। वे इस बंधन को व्यर्थ और बेकार की बात समझते थे।'' जाहिर है कि 'पढ़े-लिखे' लोग पाँत तोड़कर अपने गुरूर की तुष्टि करना चाहते हैं। पूरी कहानी में ऐसे स्थलों की बहुलता है।

8.5 सामाजिक सरोकार

कहा जाता है कि कविता हृदय की और कहानी दिमाग की वस्तु होती है। कुछ भी हो, असली कहानी वही है, जिसमें समाज प्रतिबिंबित होता हो और परिवेश से लिए गए पात्र पूरी जीवंतता के साथ सजीव कर दिए गए हों। 'बूढ़ी काकी' में प्रेमचंद ने समाज के उच्च वर्ग और उसकी खोखली मर्यादाओं को निशाना बनाया है। परिवार, खानदान, वर्ग, समुदाय, समाज में से कुछ भी हो, सबसे बड़े या उच्च प्रतिष्ठित का ही अनुकरण शेष सभी करते हैं। ब्राह्मण परिवार के माध्यम से कथाकार द्वारा एक ओर तो यह बताने का प्रयास किया गया है कि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने मात्र से कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता, बल्कि आचरण भी अनुकूल होना चाहिए, तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज के चित्रण द्वारा सामाजिक और नैतिक मूल्यों के अनुपालन में बरती गई शिथिलता पर उँगली उठाई है।

रिश्तों की मर्यादाएँ स्वार्थ और लालच की आँधी में तार-तार हो जाती हैं। बुद्धिराम और रूपा के आचरण द्वारा प्रेमचंद ने यही प्रमाणित किया है। रिश्तों का एक और यथार्थ रूप लाड़ली व काकी के माध्यम से दिखाया गया है। अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक, नाई, भाट, धोबी, कहार, बाजे वाले आदि 'बूढ़ी काकी' कहानी में उतरकर सामाजिक ताना-बाना का स्वरूप पाठकों के समक्ष उजागर करते हैं।

समाज के नाते-रिश्ते, रीति-रिवाज, उत्सव-त्योहार इत्यादि सामाजिक वातावरण का निर्माण करते हैं। प्रेमचंद ने बुद्धिराम के पुत्र मुखराम के तिलकोत्सव के वर्णन के द्वारा एक ओर तो सामाजिक गतिविधियों को दृश्यांकित किया है, वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं के मामले में उसके दोहरे मापदंडों को दिखाया है। बुद्धिराम-रूपा अपने पुत्र के तिलकोत्सव को जिसकी बदौलत इतने धूमधाम से मना रहे हैं, उसी को कुत्ते के समान दुत्कारते हैं और यहाँ तक कि भूखा रखकर उसे जूठे पत्तल चाटने के लिए विवश कर देते हैं। समाज के सरोकारों को चित्रित करने में पूरी स्वाभाविकता दृष्टिगत होती है।

8.6 धार्मिक मान्यता

मनुष्य के आचरण को धार्मिक प्रवृत्तियाँ और उनसे निर्मित सोच बहुत हद तक प्रभावित करती है। धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप व्यक्ति को पाप-पुण्य की चिंता सताती है, जिसके परिणामस्वरूप कई बार चमत्कार हो जाते हैं और गलत रास्ते पर भटका हुआ वह सही रास्ते पर आ जाता है। इस कहानी में कथाकार ने यही चमत्कार दिखाया है।

8.6.1 पाप-पुण्य की चिंता

पाप-पुण्य का अंर्तद्वंद्व दोनों लालची-स्वार्थी-अत्याचारी पात्रों (बुद्धिराम-रूपा) के मन में आद्यंत चलता है। बुद्धिराम का अंतर्मन उसे कचोटता रहता है, किंतु वह नैतिक रूप से उबर नहीं पाता है– ''बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी संपत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ।'' बाद में तो उसे अपने किए पर पछतावा भी नहीं होता है।

रूपा को पाप-पुण्य की चिंता अधिक सताती है और इसीलिए उसके स्वभाव की तीव्रता बूढ़ी काकी को ज्यादा नहीं अखरती थी। पूरी कहानी में वह अत्याचार तो करती है, किंतु अंततः काकी के क्षुधा शांत करने के तरीके को देखकर उसका जमीर जाग उठता है– ''रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख पड़े थे।'' इस प्रकार धार्मिक आधार पर अपने पापों के प्रति वह सचेत हो जाती है। वस्तुतः पाप-पुण्य की सोच मनोवैज्ञानिक धरातल पर कार्य करती है और यदि आडंबरहीन तरीके से इस सोच का अनुपालन किया जाए तो मनुष्य की मनुष्यता जाकर भी वापस आ सकती है।

8.6.2 रूपा का हृदय-परिवर्तन

हृदय-परिवर्तन के कारण कभी वाल्मीकि जैसे ऋषि-कवि भारत को मिले थे, तो लौकिकता-पारलौकिकता की सोच के चलते यह सिलसिला बराबर चलता रहता है। रूपा का हृदय-परिवर्तन अनायास ही नहीं हो जाता है। भारतीय संस्कृति, सामाजिक मूल्य और नैतिक मूल्य रूपा के हृदय-परिवर्तन का आधार बनते हैं तथा अपनी कृतघ्नता को वह कृतज्ञता में बदल देती है। लाड़ली की भूमिका, अप्रत्यक्ष ही सही, किंतु इस हृदय-परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण है। बदली हुई रूपा का कथन देखिए– ''हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी संपत्ति से मुझे दो सौ रुपया आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति। और मेरे कारण। हे दयामय भगवान! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपए व्यय कर दिए, परंतु जिसकी बदौलत हज़ारों रुपए खाए, उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है।'' और फिर रूपा काकी से अंतर्नाद कर उठती है– ''काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।''

रूपा का हृदय-परिवर्तन प्रेमचंद की कहानी-कला और भारतीय कथा-परंपरा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। प्रेमचंद अपनी कहानियों को किसी न किसी निष्कर्ष तक पहुँचाते हैं और जो भी समस्या कहानी के माध्यम से उठाते हैं, उसका कोई न कोई हल भी देते हैं। 'बूढ़ी काकी' में भी रूपा के हृदय-परिवर्तन के द्वारा एक सटीक हल सुझाते हैं। भारतीय कथा-परंपरा का अनुपालन करते हुए वे इसे सुखांत भी रूपा के हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही बना पाते हैं।

8.7 प्रेमचंद की नारी से संबंधित दृष्टि

प्रेमचंद का संपूर्ण कथा-साहित्य नारियों के साथ न्याय करता है। उनकी 'ईदगाह', 'बेटों वाली विधवा' जैसी अनेक कहानियों के कथ्य के केंद्र में नारी चरित्र ही हैं। भारतीय समाज में नारी सदैव ही पूज्य रही है; यह अलग बात है कि देखने वाला किस नजरिए से देखता है। प्रेमचंद की दृष्टि सकारात्मक रही है और जहाँ कहीं उन्हें कमी दिखाई पड़ी है तो उस कमी को दूर करने हेतु उन्होंने उसी के अनुरूप कथानक की संरचना कर डाली है। 'मंत्र', 'पूस की एक रात' जैसी अनेक कहानियों में उन्होंने समतामूलक नारी चरित्रों को उतारा है, जिनकी वही समस्याएँ हैं जो पुरुषों की हैं, जबकि 'बूढ़ी काकी' में एक ऐसी असहाय वृद्धा नारी की कहानी है, जिसके पति एवं तरुण पुत्रों का निधन हो चुका है और अपने भतीजे को सब कुछ देने के बावजूद वह हर तरह से लाचार है। समाज के प्रत्येक वर्ग में ऐसी बेबस स्त्रियों के उदाहरण मिल जाएँगे।

अपने आस-पास के परिवेश में झाँकने पर बूढ़ी काकी जैसे कुछ पीड़ित अवश्य मिल जाएँगे। यह प्रेमचंद का कहानी-कौशल और भाषिक सामर्थ्य है जो कि उन्होंने कथानक के माध्यम से हूबहू ऐसी पीड़ित असहाय विधवा वृद्ध स्त्री का मार्मिक चित्र खींच दिया है, जो बरबस ही पाठक की समस्त संवेदनाओं की अधिकारिणी बन जाती है। यह प्रेमचंद का नारी के लिए सम्मान और आदर भाव ही है, जो इस कहानी के रूप में झलकता है। अनेक व्यंग्यों और उपहासों के जरिए वे नारी का अपमान और तिरस्कार करने वालों की खबर भी लेते हैं, जैसा कि उन्होंने आलोच्य कहानी के बुद्धिराम और रूपा के साथ किया है। निश्चित तौर पर 'बूढ़ी काकी' नारी-विमर्श की दृष्टि से एक सशक्त कहानी है।

8.8 भाषा और शब्दावली

भाषा किसी भी विधा की जान होती है और शब्दावली उसका शरीर। 'बूढ़ी काकी' की बूढ़ी काकी वस्तुतः बूढ़ी काकी इसीलिए प्रतीत होती है, क्योंकि भाषा में मर्म व शब्दों में संवेदना भर दी गई है। तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज व मिश्रित शब्दों का प्रयोग यथास्थान किया गया है। व्यंग्यात्मक शब्दावली, व्यंजनापूर्ण सूत्र और उपहासपूर्ण वाक्य पात्रों के आचरण, मनोदशा एवं सटीक बिंबों को दर्शाने हेतु प्रयुक्त किए गए हैं। प्रेमचंद ने पात्रों के परिवेश, शिक्षा और भूमिका के अनुकूल भाषा की संरचना की है। बूढ़ी काकी के स्वकथन का एक अंश देखिए– ''मैं अंधी, अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ , न बूझूँ। यदि आँगन में चली गई तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खाना खा रहे हैं फिर आना। मुझे घसीटा, पटका।'' वर्णनात्मकता हेतु उन्होंने तत्सम शब्दावली युक्त शृंगारिक भाषा का प्रयोग किया है– ''आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे,............।''

'जिह्वा', 'नेत्र', 'सुगंधि', 'वाटिका', 'वृहद', 'क्षुधा', 'प्रबल', 'प्रवाह' आदि ढेरों तत्सम शब्द हैं, जिनका प्रयोग 'बूढ़ी काकी' में किया गया है। 'दही', 'अम्मा', 'ठंडक', 'पूड़ी', 'खुर्चन', 'पानी', 'कगार' आदि सैकड़ों तद्भव शब्दों का प्रयोग करके कहानी को सरल बनाया गया है। 'टेंटुवा', 'पत्तल', 'जेवनार', 'मुक्कियाँ', 'चबैना', 'हंडे', 'खटका' आदि देशज शब्द भी प्रयोग में लाए गए हैं। 'बाज़ार', 'सब्ज़बाग', 'शहनाई', 'ख़ूब', 'आवाज़' (फ़ारसी), 'तक़दीर', 'जल्दबाज़ी' (अरबी) जैसे अनेक विदेशज शब्दों का इस्तेमाल भी कहानीकार द्वारा किया गया है। कुल मिलाकर कहा जाए तो भाषिक-शाब्दिक प्रयोग में पर्याप्त विविधता है।

8.9 सारांश

इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

- प्रेमचंद की कहानियाँ बहुउद्देशीय होती हैं और 'बूढ़ी काकी' कहानी का उद्देश्य पारिवारिक और सामाजिक विद्रूपताओं के बीच नारी की स्थिति तथा धर्म की क्रियाशीलता की परिणति को प्रकट करना है।
- मनोवैज्ञानिकता के विभिन्न आयामों के मद्देनजर बूढ़ी काकी जैसी वृद्ध व असहाय स्त्रियाँ त्रासदी हेतु अभिशप्त होती हैं और उनकी त्रासदी का निवारण सोच बदलने पर ही संभव है।
- कहानी में बूढ़ी काकी बुढ़ापे में सहारे के लिए अपनी डेढ़-दो सौ रुपए वार्षिक आय वाली संपत्ति अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम लिख देती है। बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा बूढ़ी काकी पर अत्याचार करने लगते हैं। बुद्धिराम की लड़की लाड़ली बूढ़ी काकी से लगाव रखती है। बुद्धिराम के बड़े पुत्र मुखराम का तिलक-उत्सव होता है, तो बूढ़ी काकी के मन में आस जगती है कि एक लंबे अंतराल के बाद उन्हें स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होगा, किंतु निराशा ही हाथ लगती है। देर रात सब लोगों के सोने के बाद लाड़ली अपने हिस्से की पूड़ियाँ लेकर जाती है, जिनसे वृद्धा की क्षुधा शांत नहीं होती है। फलस्वरूप वे आँगन में पहुँचकर मेहमानों द्वारा पत्तलों में छोड़ी गई जूठन से अपनी भूख मिटाने लगती हैं। यह दृश्य देखकर रूपा का हृदय परिवर्तित होता है और तब वह बूढ़ी काकी को आदरपूर्वक भोजन कराती है।
- सादृश्यों के सापेक्ष यथार्थ-चित्रणों, सूत्र वाक्यों, व्यंग्यों, विद्रूपों के साथ-साथ सामाजिक सरोकार और धार्मिक मान्यता की चर्चा करते हुए प्रेमचंद की नारी से संबंधित दृष्टि का निरूपण किया गया है। भाषा और शब्दावली के प्रयोग की झाँकियाँ दी गई हैं।

8.10 अभ्यास

1. रूपा का चरित्र-चित्रण करते हुए उसके हृदय परिवर्तन का कारण बताइए।
2. 'बूढ़ी काकी' कहानी की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
3. प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि का निरूपण 'बूढ़ी काकी' कहानी के आधार पर कीजिए।
4. 'बूढ़ी काकी' कहानी की भाषा पर टिप्पणी कीजिए।
5. क्या लाड़ली के बिना 'बूढ़ी काकी' कहानी पूरी हो सकती थी? यदि नहीं तो क्यों?

इकाई 9 बेटों वाली विधवा : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कहानी-कला में गुणात्मक परिवर्तन

- 9.2.1 कथ्य के स्तर पर
- 9.2.2 शिल्प के स्तर पर

9.3 कथावस्तु की दृश्यात्मकता और परिदृश्यात्मकता

9.4 विडंबना और फरेब का मकड़जाल

9.5 नारी की स्थिति

- 9.5.1 घर-परिवार में
- 9.5.2 समाज में
- 9.5.3 पुरुष-प्रधान समाज के बरक्स नारी के अधिकार

9.6 मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थपरक चित्रण

9.7 संवेदना का शिल्प

9.8 भाषिक प्रौढ़ता

9.9 सारांश

9.10 अभ्यास

9.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के कहानी से संबंधित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' से संबंधित खंड - 2 की पाँचवीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप मध्यवर्गीय परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में नारी से संबंधित प्रेमचंद की धारणा समझ सकेंगे। प्रस्तुत इकाई में आप प्रेमचंद की प्रौढ़ कहानी 'बेटों वाली विधवा' का अध्ययन करेंगे। इस कहानी में लगभग अस्सी साल पहले के औपनिवेशिक भारत के एक ब्राह्मण परिवार का दृश्यांकन किया गया है, जिससे आज के भारत की तस्वीर भी सजीव हो उठती है और कहानी सार्वकालिक बन जाती है। इस कहानी का अध्ययन करने के उपरांत आप–

- प्रेमचंद की कहानी-कला में होने वाले परिवर्तनों और तथ्यों को गहराई से समझ सकेंगे तथा विभिन्न पात्रों की मानसिकता को महसूस कर सकेंगे/सकेंगी;
- यथार्थ के धरातल पर निर्मित कथानक के माध्यम से एक विकट समस्या का अनसुलझा प्रकाशन देख सकेंगे/सकेंगी;
- मार्मिक दृश्यों के माध्यम से संवेदना, करुणा एवं मानवता के नकारात्मक व सकारात्मक पहलुओं का स्पर्श कर सकेंगे/सकेंगी;

- पारिवारिक और सामाजिक विद्रूपताओं के बीच नारी की स्थिति तथा वात्सल्य की क्रियाशीलता की परिणति को समझ सकेंगे/सकेंगी; और
- प्रेमचंद की भाषा और शब्दों की जादूगरी में आई प्रौढ़ता के साथ उनकी व्यंग्यात्मक छटाओं के दर्शन कर सकेंगे/सकेंगी।

9.1 प्रस्तावना

प्रेमचंद का बचपन का पुकारू नाम 'नवाब' था। 'नवाब राय' के नाम से उन्होंने उर्दू में लेखन किया था। 'धनपत राय' उनका औपचारिक नाम था और हिंदी में लेखन उन्होंने इसी नाम से आरंभ किया था। बाद में हिंदी-जगत में उन्हें प्रेमचंद/मुंशी प्रेमचंद के नाम से जाना गया और अब वे उसी नाम से अमर हो चुके हैं। हिंदी साहित्य में उनके अतुलनीय योगदान के कारण उन्हें 'कथा-सम्राट' कहा जाता है। उनके कथा-साहित्य में उनके युग का समकालीन यथार्थ झाँकता है, जो आज भी प्रासंगिक है। प्रेमचंद-युग से पूर्व कथा-साहित्य कल्पना-लोक की चीज हुआ करती थी, जिसमें तिलिस्म, जासूसी, ऐयारी आदि की चमत्कारों से भरी दुनिया जीती-जागती दिखाई देती थी; जिसमें फुटकर रूप में ही मध्यवर्गीय पात्रों का चित्रण आदर्शवादी ढंग से किया गया है; प्रेमचंद ने उन मध्यवर्गीय पात्रों को यथार्थ के धरातल पर उतारा है। प्रेमचंद के कथा-साहित्य में साहित्यिक-सामाजिक-दार्शनिक विचारधाराएँ, राष्ट्रीय चेतना, किसानों का जीवन, नारी-जीवन, दलित चेतना, धार्मिक-सांप्रदायिक सोच, घर-परिवार-समाज आदि संपूर्णता में उपस्थित होकर कथ्य की विविधता को दर्शाते हैं। झूठ-फरेब आदि के अनगिनत चित्र टंकित हैं।

'बेटों वाली विधवा' का पहला प्रकाशन हिंदी की मासिक पत्रिका 'चाँद' में सन् 1932 के नवंबर माह में हुआ था। यह कहानी 'बदनसीब माँ' नाम से उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' में संकलित व प्रकाशित है। अमृत राय द्वारा संपादित 'मानसरोवर' के पहले भाग में संगृहीत यह कहानी भारतीय मध्यवर्गीय परिवार की नारी की विवशता व नियति का मार्मिक चित्रण करती है।

इस कहानी में पंडित अयोध्यानाथ के निधन के बाद उनकी विधवा फूलमती, उनके तीन विवाहित पुत्रों (क्रमशः कामतानाथ, उमानाथ और दयानाथ), एक अविवाहित पुत्र (सीतानाथ) तथा एक अविवाहित पुत्री (कुमुद) के आपसी संबंधों में आए बदलावों को बड़ी कुशलता व मार्मिक तरीके से चित्रित किया गया है। पिता की मृत्यु के साथ ही बेटे संपत्ति, बाग-बगीचे और धन के पीछे स्वार्थ में अंधे हो जाते हैं। बेटों ही नहीं बहुओं के चरित्र में भी एकाएक बदलाव से फूलमती स्तब्ध रह जाती है। माँ की अवज्ञा के कारण तेरहवीं में परिवार की छीछालेदर व थू-थू होती है। कामतानाथ, उमानाथ और दयानाथ तथा उनकी पत्नियाँ मिलकर सीतानाथ को भी अपने जैसा स्वार्थी और मक्कार बना लेते हैं तथा छल-कपट से फूलमती के गहने हथिया लेते हैं। दहेज बचाने के लोभ से मृत पिता द्वारा नियत परिवार में कुमुद का रिश्ता न करके माँ की इच्छा के विरुद्ध चारों लड़के अपनी एकमात्र बहिन को एक अधेड़ के साथ धकेल देते हैं। फूलमती परिवार की इज्जत बचाने के लिए बेटे-बहुओं के सभी अत्याचारों को सहती जाती है और एक नौकरानी की तरह जीवनयापन के लिए विवश हो जाती है। एक दिन जब वह बढ़ी हुई गंगा से पानी लेने जाती है तो पैर फिसलने के कारण गंगा में डूबकर उसकी मृत्यु हो जाती है और इस प्रकार कहानी का त्रासद अंत होता है। पुरुष-प्रधान समाज में पतिविहीन नारी की दुर्दशा का सजीव चित्रण करती यह कहानी धर्म-अधर्म और मनु के नियमों के वर्णन के माध्यम

से बड़ी मार्मिक बन पड़ी है और जब तक दुनिया में झूठ-फरेब, छल-छद्म एवं स्वार्थपरता रहेगी, यह कहानी प्रासंगिक बनी रहेगी।

9.2 कहानी-कला में गुणात्मक परिवर्तन

समय के साथ प्रेमचंद की कहानी-कला में गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं। उन्होंने मनुष्य के स्वभाव और उसके द्वारा निर्मित समाज का सूक्ष्म निरीक्षण किया था, इसीलिए उनको व्यक्ति और समाज के द्वंद्वों को शब्दों में ढालने में निपुणता मिलती गई। उनकी कथाओं के पात्र कठपुतलियों की तरह उनके मंतव्य-संवेदना के सूत्रों से बँधकर पाठकों के समक्ष वास्तविक जीता-जागता आचरण करते हैं। 'बेटों वाली विधवा' एक सामाजिक कहानी है। इसमें एक ओर अधिकार की लड़ाई है, तो दूसरी ओर स्वार्थ की आँधी में नैतिक मानदंडों के बिखराव का दंश है। छिट-फुट रूप में समाज-मनोविज्ञान भी अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। यह तय है कि कथ्य और शिल्प के स्तरों पर 'बेटों वाली विधवा' में प्रेमचंद की कहानी-कला में गुणात्मक परिवर्तन की दृष्टि से पर्याप्त परिपक्वता दिखाई देती है, इस परिमार्जन का आकलन इस तरह से किया जा सकता है।

9.2.1 कथ्य के स्तर पर

प्रेमचंद की संवेदना निश्चित रूप से भारतीय समाज और विशेषकर घर-परिवार में नारी की स्थिति से जुड़ी हुई है। विधवा, असहाय और वृद्ध स्त्रियों के प्रति वे अधिक संवेदनशील हैं, जिन्हें वे सदियों की रूढ़ियों और आडंबरों से मुक्त करवाना चाहते हैं। 'स्वर्ग की देवी', 'धिक्कार', 'स्त्री और पुरुष', 'उद्धार', 'परीक्षा' जैसी अनेक कहानियों में प्रेमचंद की यही चिंताएँ झलकती हैं। प्रेमचंद भले ही स्त्रियों के प्रति करुणाशील रहे हों, किंतु उन्होंने उनको विद्रोह के उपयुक्त नहीं समझा। कुछ विद्वान तो यह भी कहने से नहीं चूकते कि परंपरागत नारी-संहिता के प्रति उनका लगाव कम नहीं हुआ था। कथ्य की स्वाभाविकता और पंडित अयोध्यानाथ की मृत्यु के बाद कहानीकार ने सांस्कारिक विकार के द्वारा कहानी को चरित्र प्रधान बना दिया है। चारित्रिक निखार कथानक के विकास के साथ गुंफित करके इस तरह किया गया है कि तत्कालीन कहानियों और कहानीकारों की तुलना में कहानी-कला की दृष्टि से इसमें उत्कृष्टता आ गई है। हालाँकि कथानक की एकसूत्रता में कुछ कमियाँ जरूर इस कहानी में उजागर होती हैं। यथा, कहानी के पहले भाग में सीतानाथ को विवाहित बताया गया है - ''चारों लड़कों के विवाह हो चुके थे, केवल लड़की क्वाँरी थी। .... चारों बहुएँ एक-से-एक बढ़कर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती, तो चारों बारी-बारी से उसके पाँव दबातीं; वह स्नान करके उठती, तो उसकी साड़ी छाँटती।'' जबकि कहानी के अगले यानी दूसरे भाग में सीतानाथ के विवाह की चर्चा होती है– ''कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशंसा-भाव से देखा - फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी तो करना है। सीतानाथ सबसे छोटा था। सिर झुकाए भाइयों की स्वार्थ-भरी बातें सुन-सुनकर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था। अपना नाम सुनते ही बोला– मेरे विवाह की आप लोग चिंता न करें। मैं जब तक किसी धंधे में न लग जाऊँगा, विवाह का नाम भी न लूँगा; और सच पूछिए तो मैं विवाह करना ही नहीं चाहता। देश को इस समय बालकों की जरूरत नहीं, काम करने वालों की जरूरत है।''

कथोपकथन का संयोजन भी पात्रों की भूमिका और उनके चरित्रों के अनुरूप है। छोटे-छोटे संवाद कथावस्तु को भी गतिशीलता प्रदान करते हैं। पात्रों का चारित्रिक उभार उनके मनोभावों और घटनाओं के उतार-चढ़ाव के साथ होता है। तेरहवीं के भोज में शोरबे में मरी हुई चुहिया के निकलने से हुई धर्मभ्रष्टि की ग्लानि, मालिकाना हक छिनने पर ईर्ष्या-द्वेष की भावना, दबी हुई सामाजिक चेतना, भारतीय मूल्यों के प्रति आस्था, मनोवैज्ञानिक

अंतर्दृष्टि, पारिवारिक संबंध और मूल्य-बोध जैसे विविध विषय 'बेटों वाली विधवा' की कथ्यात्मक विशेषताओं के नमूने हैं। कहानी के विभिन्न उद्देश्य देशकाल और वातावरण के संग समन्वित होकर कहानी-कला को ऊँचाई प्रदान करते हैं।

9.2.2 शिल्प के स्तर पर

'बेटों वाली विधवा' तक आते-आते प्रेमचंद की शिल्पगत तकनीक में भी परिमार्जन साफ दिखाई पड़ता है। शिल्पगत स्तर पर 'नई कहानी' के दौर की पृष्ठभूमि को निर्मित करने का सिलसिला लगभग पूरा हो जाता है, क्योंकि 'बेटों वाली विधवा' का अंत भी नई कहानियों की तरह त्रासद है। सूक्ष्मता से देखा जाए तो कहानी का कथानक वृद्धा फूलमती के सापेक्ष हो रही घटनाओं के साथ निर्मित हो रहा है और यह सब सुविचारित भाषिक प्रयोगों से ही संभव है। यहाँ डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का एक कथन तक्रसंगत प्रतीत होता है– ''प्रेमचंद की प्रारंभिक रचनाओं में विदेशी शब्दों तथा नित्य-प्रति के व्यवहार में आने वाले शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों आदि का प्रयोग कम मिलता है, लेकिन बाद की रचनाओं में धीरे-धीरे इनके प्रयोग बढ़ते गए हैं। सत्य तो यह है कि प्रेमचंद की भाषा रचनाओं के क्रम में ही विकसित हुई है। उर्दू का लचीलापन तो उनकी प्रारंभिक कृतियों में भी दिखाई देता है। यही कारण है कि ठोस कथानक के अभाव में भी 'वरदान' जैसी रचनाएँ अपनी भाषा-क्षमता के कारण पाठक को बराबर आकर्षित करती रहती हैं।'' (प्रेमचंद की भाषा, 'भाषा : स्थिति और सोच', पृष्ठ 21)।

'बेटों वाली विधवा' में वर्णनात्मकता की तकनीक और इस हेतु प्रयुक्त भाषा में भी अपेक्षित सुधार दिखाई पड़ता है। इसमें कल्पनाशील लच्छेदार शब्दावली की जगह यथार्थपरक भाषा का प्रयोग अधिक हुआ है। सादृश्यों के स्थान पर सटीक कथनों या फिर वर्णन से ही बिंब निर्मित किए गए हैं; यथा, फूलमती का चरित्र-चित्रण करते समय प्रेमचंद चाहते तो पहले के समान प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग करते हुए सजावटी शब्दों से भी यह कह सकते थे कि ''बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है; किंतु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था।'' लेकिन ऐसा उन्होंने किया नहीं। इसी प्रकार कहानी में आरंभ से अंत तक अंतर्द्वंद्व बना रहता है, जिससे कहानी की रोचकता में कहीं भी कमी नहीं आ पाती है। कुल मिलाकर कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर प्रेमचंद की कहानी-कला में पर्याप्त परिमार्जन दृष्टिगत होता है।

9.3 कथावस्तु की दृश्यात्मकता और परिदृश्यात्मकता

प्रविधियों के प्रयोग की दृष्टि से भी 1925 ई. तक प्रेमचंद में काफी बदलाव आ चुका था। कथावस्तु की दृश्यात्मकता और परिदृश्यात्मकता के संबंध में उन्होंने नई प्रविधियों को अपनाना शुरू कर दिया था। 'बेटों वाली विधवा' में दृश्यात्मक प्रविधि का प्रयोग इतने कौशल से किया गया है कि पाठक सब कुछ अपनी आँखों के सामने घटता-सा प्रतीत करता है। उदाहरण के तौर पर फूलमती के साथ जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह चलचित्र के समान झलक रहा है और इसीलिए साफ दिख रहा है कि त्रस्त होने के बावजूद बूढ़ी फूलमती अपने परिवार के लिए अमंगल की भावना नहीं पालती है। पीड़ित होने के कारण किए गए कृत्यों के लिए वह स्वयं को ही दोषी ठहराती है। यहाँ वृद्धा का संस्कारजन्य कल्याणकारी मनोविज्ञान क्रियाशील है और पूरी कहानी में वृद्धा की विभिन्न मानसिक स्थितियों की छटाओं को निहारते हुए अंत से ठीक पहले भी हम पुनः संस्कारजन्य कल्याणकारी मनोविज्ञान से साक्षात्कार करते हैं– ''फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देखकर कहा– तुम भीग जाओगे बेटा, सर्दी हो जाएगी। कामतानाथ

बोले– तुम भी तो भीग रही हो। कहीं बीमार न पड़ जाओ। फूलमती निर्मम भाव से बोली– मैं बीमार न पड़ूँगी। मुझे भगवान् ने अमर कर दिया है।'' यहीं से कहानी चरमोत्कर्ष की ओर उन्मुख हो जाती है। संपूर्ण कहानी वृद्धा की विवशता के इर्द-गिर्द घूमती है और उसकी मृत्यु के बाद ही उसकी विवशता समाप्त होती है।

कथाकार की उपस्थिति को पाठक अप्रत्यक्ष ढंग से वर्णनकर्ता के रूप में महसूस करता है, जो कभी चुपके-से परामर्शदाता, तो कभी दार्शनिक या फिर कभी किस्सागो बनकर कहानी में विद्यमान रहता है। दृश्यात्मक प्रविधि पात्रों के वार्तालाप को नाटकीय प्रभाव से आच्छादित कर देती है और परिदृश्यात्मक प्रविधि के द्वारा पाठक को यह महसूस कराया जाता है कि जैसे वह किसी ऊँचे मंच पर विराजमान होकर पात्रों की सारी गतिविधियों को घटित होते हुए देख रहा है और उनके विचारों व संवेदनाओं को प्रत्यक्षतः उनसे पाकर अनुभव कर रहा है। 'बेटों वाली विधवा' कहानी की परिदृश्यात्मकता भी ऐसी ही है। इसका एक सजीव उदाहरण देखिए– ''गंगा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज सामने के कूल से मिला हुआ था। किनारों के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गई थीं। घाट ऊपर तक पानी में डूब गए थे। फूलमती कलसा लिए नीचे उतरी, पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पाँव फिसला। सँभल न सकी। पानी में गिर पड़ी। पल भर हाथ-पाँव चलाए, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गईं।'' कहानी का अंतिम वाक्य (संवाद) परिदृश्यात्मक प्रविधि का बेजोड़ नमूना है, जो न केवल कहानी का निष्कर्ष है, बल्कि फूलमती के जीवन का भी निष्कर्ष है– ''हाँ, सब हैं भाई, मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है?'' बाद के प्रसिद्ध कथाकार जैनेंद्र ने अपनी कहानी 'अपना-अपना भाग्य' का भी अंत कुछ इसी तर्ज पर किया था। ध्यान देने की बात यह है कि प्रेमचंद ने कहानी का अंत प्रश्नवाचक चिह्न से करके उन लोगों को अनुत्तरित कर दिया है, जो इस कहानी के बल पर उन्हें नियतिवादी ठहराने की चेष्टा करते हैं।

9.4 विडंबना और फरेब का मकड़जाल

'बेटों वाली विधवा' कहानी में फूलमती केंद्रीय पात्र है और चार अन्य पात्र (कामतानाथ, उमानाथ, दयानाथ और सीतानाथ) ऐसे हैं, जिनकी प्रमुख भूमिकाएँ हैं। संयोग से ये चारों पात्र फूलमती के पुत्र व आपस में सगे भाई हैं। दृश्यों को सजीव और यथार्थ बनाने हेतु पंडित अयोध्यानाथ मर कर भी जीवित बना दिए गए हैं। कुमुद और उसकी भाभियों का अस्तित्व केवल कथानक को प्रवाहमय बनाए रखने तक सीमित है तथा इन्हीं के सहारे मुख्य पात्रों की मानसिकता को उजागर किया गया है।

विडंबना यह है कि जो बेटे पंडित अयोध्यानाथ के जीवित रहने तक 'एक-से-एक सुशील' और जो बहुएँ 'एक-से-एक बढ़कर आज्ञाकारिणी' थीं, वही उनके देहांत के बाद फूलमती के दुःखों का कारण बन गए– ''पति के मरते ही अपने पेट के लड़के उसके शत्रु हो जाएँगे, उसको स्वप्न में भी अनुमान न था। जिन लड़कों को उसने अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला, वही आज उसके हृदय पर आघात कर रहे हैं।'' कलियुगी बेटों की सारी नैतिकता फुर्र हो जाती है और उनकी कृत्रिम सज्जनता व निर्दयता फूलमती के समक्ष उद्घाटित हो जाती है। स्वार्थ की पराकाष्ठा की जीती-जागती मिसाल के रूप में इन बेटों के चरित्र के माध्यम से उनके जैसे लोगों के मनोविज्ञान को प्रेमचंद इन शब्दों में समझाते हैं– ''उमानाथ का औषधालय खुला, मित्रों की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलसा हुआ। सीतानाथ को वजीफा मिला और विलायत गया, फिर उत्सव हुआ। कामतानाथ के बड़े लड़के का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, फिर धूमधाम हुई; लेकिन फूलमती के मुख पर आनंद की छाया तक न आई। कामतानाथ

टाइफाइड में महीने भर बीमार रहा और मरकर उठा। दयानाथ ने अबकी अपने पत्र का प्रचार बढ़ाने के लिए वास्तव में एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छः महीने की सजा पाई। उमानाथ ने एक फौजदारी के मामले में रिश्वत लेकर गलत रिपोर्ट लिखी और उसकी सनद छीन ली गई; पर फूलमती के चेहरे पर रंज की परछाईं तक न पड़ी। उसके जीवन में अब कोई आशा, कोई दिलचस्पी, कोई चिंता न थी। बस, पशुओं की तरह काम करना और खाना, यही उसकी जिंदगी के दो काम थे।''

भ्रष्ट और स्वार्थी व्यक्ति अच्छे-बुरे का भेद भूल जाते हैं और तब भरे समाज में भी वे अपनी क्रूर प्रवृत्ति को दर्शाने लगते हैं। इतना ही नहीं वे अपनों के प्रति भी छल-कपट से भर जाते हैं और फरेब का मकड़जाल बुनने लगते हैं। उन्हें पूरा भान होता है कि वे जो कुछ कर रहे हैं, ठीक नहीं कर रहे हैं, किंतु लालच के कारण वे अपने स्वार्थ के आवेग को रोक पाने में असफल रहते हैं और गलतियों को दोहराते रहते हैं। ठीक यही फूलमती के चारों बेटे और बहुएँ भी करते हैं। स्पष्टतः इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर आज के स्वार्थी, लोलुप, निर्दयी और निर्मम चरित्रों को उतारा है।

9.5 नारी की स्थिति

प्रेमचंद ने नारी की दशा को देखा, परखा और समझा था, इसलिए न केवल साहित्य में बल्कि व्यक्तिगत जीवन में भी उन्होंने नारियों के साथ न्याय करने की कोशिश की। उनकी 'ईदगाह', 'स्वर्ग की देवी', 'धिक्कार', 'स्त्री और पुरुष', 'उद्धार', 'परीक्षा', 'बूढ़ी काकी' जैसी अनेक कहानियों के कथ्य के केंद्र में नारी चरित्र ही हैं। सनातन काल से भारतीय समाज में नारी पूज्य रही है; यह अलग बात है कि समय-समय पर उस पर अत्याचार भी होते रहे हैं। अपनी सकारात्मक दृष्टि के कारण प्रेमचंद को जहाँ कहीं कमी दिखाई पड़ी है तो उसे दूर करने के लिए उन्होंने उसी के अनुरूप कथा की रचना की है। 'मंत्र', 'पूस की रात' जैसी अनेक कहानियों में उन्होंने समतामूलक नारी चरित्रों को उतारा है, जिनकी वही समस्याएँ हैं जो पुरुषों की हैं, जबकि 'बेटों वाली विधवा' में एक ऐसी लाचार वृद्धा स्त्री की कहानी है, जिसके पति का निधन हो चुका है और बेटे अत्याचार पर उतारू हैं। घर-परिवार और समाज के प्रत्येक वर्ग में ऐसी लाचार स्त्रियाँ विद्यमान हैं।

9.5.1 घर-परिवार में

अपने पति के निधन के पहले फूलमती घर की असली मालकिन थी; बेटे-बहुएँ उसको न केवल भरपूर आदर देते थे, बल्कि उसकी सेवा-सुश्रूषा में कोई कमी न आने देते थे। उसकी घर-परिवार में जो पिछले चालीस वर्षों से स्थिति थी, उसको कहीं से कोई चुनौती मिलेगी, फूलमती ने इसकी कल्पना तक न की थी, क्योंकि ''किसी लड़के में वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाऊपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुल-मर्यादा को डुबाता है। फूलमती घर की मालकिन थी। गोकि कुंजियाँ बड़ी बहू के पास रहती थीं– बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है; किंतु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था।'' प्रेमचंद ने परिवेश और वातावरण के आधार पर 'बेटों वाली विधवा' में घर-परिवार में नारी की स्थिति और दशा का सजीव चित्रण किया है। पिता के स्वर्गवासी होते ही बेटे और बहुएँ एकदम से बदल जाते हैं एवं ऐसा लगता है कि जैसे वे किसी बात का प्रतिशोध लेने पर आमादा हो जाते हैं तथा अंततः अपने कृत्यों से वे फूलमती की जान ले लेते हैं। अपने आस-पास के परिवेश में झाँकने पर फूलमती जैसे कुछ पीड़ित अवश्य मिल जाएँगे। पीड़ित होने-

करने का यह सिलसिला जाने कब से चालू है और न जाने कब तक यूँ ही चलता भी रहेगा।

9.5.2 समाज में

समाज घर-परिवार का ही समुच्चय है, इसलिए स्वाभाविक रूप से घर और परिवार की कमियाँ समाज में भी परिलक्षित होती हैं। समाज के ताने-बाने में नारी की सुदृढ़ स्थिति के बावजूद उसके साथ हुए जुल्मों की एक लंबी दास्तान है। भारतीय समाज बहुरंगी है, इसलिए वह केवल घर-परिवार से नियंत्रित न होकर जाति, वर्ग, धर्म और संप्रदाय इत्यादि से भी नियंत्रित होता है। एक कुशल समाजशास्त्री की तरह प्रेमचंद समाज के अनुरूप नारी की स्थिति को अपनी कथाओं में तोलते हैं और पूर्ण संवेदना के साथ यथार्थपरक ढंग से विस्तृत कैनवस पर उसके चित्र उतारते हैं। 'बेटों वाली विधवा' में पूरी कहानी में समाज निरपेक्ष रहता है और कहानी के अंत में ही मुखर होता है– ''किनारे पर दो-चार पंडे चिल्लाए– 'अरे दौड़ो, बुढ़िया डूबी जाती है।' दो-चार आदमी दौड़े भी लेकिन फूलमती लहरों में समा गई थी, उन बल खाती लहरों में, जिन्हें देखकर ही हृदय काँप उठता था। एक ने पूछा– 'यह कौन बुढ़िया थी?' 'अरे, वही पंडित अयोध्यानाथ की विधवा है।' 'अयोध्यानाथ तो बड़े आदमी थे।' 'हाँ, थे तो, पर इसके भाग्य में ठोकर खाना लिखा था।' 'उनके तो कई लड़के बड़े-बड़े हैं और सब कमाते हैं?' 'हाँ, सब हैं भाई; मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है?' वैसे ऐसा कम ही होता है कि लंबे समय तक कोई परिवार या उसके मामले समाज की नजरों से बचे रह सकें और आज से अस्सी साल पहले तो यह कतई संभव नहीं प्रतीत होता है।

9.5.3 पुरुष-प्रधान समाज के बरक्स नारी के अधिकार

यह प्रेमचंद की दूरदर्शिता है जो कि उन्होंने 'बेटों वाली विधवा' के कथानक के माध्यम से पीड़ित असहाय विधवा वृद्ध स्त्री का मार्मिक चित्र तो खींचा ही, फूलमती के द्वारा समाज के पुरुष-प्रधान नियमों और कानूनों को चुनौती दिलवाते हुए नारी के अधिकारों की भी बात उठाई है, जो निश्चित ही पाठक की संवेदनाओं को बटोर लेती है। जिस नारी-विमर्श की बात करते आज के विद्वान अघाते नहीं हैं, उसे प्रेमचंद ने सौ साल पहले ही गति दे दी थी। बेटों और फूलमती के बीच वार्तालाप के कुछ अंश इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं– ''उमा ने निरीह भाव से कहा– कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है। फूलमती ने तड़पकर पूछा– किसने यह कानून बनाया है? उमा शांत-स्थिर स्वर में बोला– हमारे ऋषियों ने, महाराज मनु ने, और किसने?''

यह तो तय है कि नारी के लिए सम्मान और आदर भाव ही है, जो 'बेटों वाली विधवा' में निरूपित समस्या के रूप में झलकता है। प्रेमचंद अनेक व्यंग्यों और उपहासों के द्वारा नारी के रूप में माँ के अपमान और तिरस्कार के बिंब निर्मित करते हैं; इसलिए निश्चित तौर पर यह कहानी नारी-विमर्श की दृष्टि से मील का पत्थर बन गई है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह कहानी पुरुष-प्रधान समाज के बरक्स नारी के अधिकारों के बहस की कहानी है।

9.6 मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थपरक चित्रण

प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य में समाज के मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय पात्रों को विशेष रूप से उतारा है। 'बेटों वाली विधवा' में उन्होंने एक समूचे मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का चित्रण बड़ी बारीकी से किया है। सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष, (धार्मिक-सामाजिक) नियम-

कानून, शांति-कलह आदि के न जाने कितने रंग इसकी कथावस्तु में भर दिए गए हैं, जिससे यथार्थपरकता के साथ-साथ यह कहानी भरपूर मनोरंजन भी करती है। सामान्यतः मनुष्य के आचरण को धार्मिक प्रवृत्तियाँ और उनसे निर्मित सोच बहुत हद तक प्रभावित करती है और इसकी तथ्यपरकता तेरहवीं के भोज के दरम्यान किसी आमंत्रित व्यक्ति के शोरबे में मरी हुई चुहिया के निकलने के बाद फूलमती और घर के अन्य सदस्यों के बीच हुई तकरार से सिद्ध होती है। धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप व्यक्ति को पाप-पुण्य की चिंता सताती है, जिसके परिणामस्वरूप कई बार चमत्कार हो जाते हैं और गलत रास्ते पर भटका हुआ वह सही रास्ते पर आ जाता है, किंतु इस कहानी में ऐसा कुछ नहीं होता है, बल्कि विकृत ताक्रिकता के कारण चुहिया वाली घटना के उपरांत फूलमती के बेटे और अधिक उद्दंड एवं हठधर्मी हो जाते हैं।

स्वार्थ, अन्याय, अत्याचार, छल-कपट, चालाकी और पाखंडपूर्ण व्यवहार के पूरे घटनाक्रम कहानी को जीवंत बनाकर सार्वकालिक बना देते हैं। अपनी एकमात्र बहिन के साथ भी चारों भाई अन्याय करने से नहीं चूकते हैं। जिस प्रकार सड़े हुए फलों के साथ रखे जाने पर अच्छे फल भी सड़ने लगते हैं, उसी प्रकार कामतानाथ, उमानाथ और दयानाथ की संगति सीतानाथ की भी अच्छाई हर लेती है और वह भी माँ एवं बहिन के प्रति निर्मम हो जाता है। फूलमती की सारी संपत्ति को हथियाने के बाद उसके अधिकारों पर डाका डालना, उसको उसके कमरे से बेदखल करना, नौकरानियों के समान काम लेना और वृद्धावस्था में सावन की झड़ी में भीगते हुए गंगा से पानी लाने को विवश करना, ये सारे कृत्य यथार्थ के जीते-जागते प्रमाण हैं।

9.7 संवेदना का शिल्प

प्रेमचंद की कहानियों में व्यक्त संवेदना बेजोड़ है। मानवीय धरातल पर प्रगतिशील सोच के दायरे में रहते हुए उन्होंने समाज के दबे-कुचले-सताए हुए व्यक्तियों की पीड़ा और समस्या को अपने साहित्य में प्रमुखता से उठाया है। संवेदना को व्यक्त करने के लिए जितनी प्रविधियाँ हो सकती हैं, उन सबका इस्तेमाल कथा-सम्राट ने बड़ी चतुराई से किया है। किस्सागोई और वर्णनात्मकता से लेकर सहज संवादों, सादृश्यों और लोकोक्तियों-मुहावरों-कहावतों तक सभी का इस्तेमाल उन्होंने बखूबी किया है। 'बेटों वाली विधवा' कहानी में भी इन सभी का प्रयोग उन्होंने पूरी कुशलता के साथ किया है। पात्रों के चरित्रों को उभारते समय वे इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि संवेदना के धरातल की निर्मिति में कोई चूक न होने पाए, फिर चाहे पात्र के रूप में वह 'पूस की रात' का झबरा हो या 'दो बैलों की कथा' के हीरा और मोती ही क्यों न हों। आलोच्य कहानी में संवेदना को उभारने के लिए प्रेमचंद ने प्राकृतिक उपादानों से युक्त अलंकृत शब्दावली से आच्छादित सादृश्यों का विशेष उपयोग किया है। कहानी के चौथे भाग का अंत एक ऐसे ही सादृश्य से होता है। फूलमती का मातृत्व जब उस पर बोझ बन जाता है और वह निराशा से टूट जाती है तो कहानीकार इस संवेदना को दर्शाने के लिए कहता है कि "संध्या हो गई थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाए निस्तब्ध खड़ा था, मानो संसार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्ताचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलमती के मातृत्व ही की भाँति अपनी चिता में जल रहा था।" इस सादृश्य से निर्मित बिंब से एक सुंदर और सार्थक प्रतीकात्मकता का भी निर्माण होता है।

इसी प्रकार बेटों से तंग आकर जब फूलमती घर छोड़कर जाने का निर्णय लेती है, किंतु समाज के भय से अपना निर्णय बदलने पर विवश हो जाती है और सारी रात इस वेदना

के कारण रोती रहती है, तो फिर कथाकार कहता है– ''शरद का प्रभाव डरता-डरता ऊषा की गोद से निकला, जैसे कोई कैदी छिपकर जेल से भाग आया हो।''

एक और सादृश्य यथार्थ जीवन से लिया गया है, जिसका जिक्र करना जरूरी है। यथास्थितिवादी होने के बाद समझौता करने पर जो भाव और वेदना पैदा होती है, उससे निर्मित संवेदना का निरूपण प्रेमचंद इन शब्दों में करते हैं– ''आज से फूलमती का यह नियम हो गया कि जी तोड़कर घर का काम करना और अंतरंग नीति से अलग रहना। उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अब गहरी वेदना छाई हुई नजर आती थी। जहाँ बिजली जलती थी, वहाँ अब तेल का दिया टिमटिमा रहा था, जिसे बुझा देने के लिए हवा का एक हलका-सा झोंका काफी है।'' निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'बेटों वाली विधवा' कहानी में संवेदना का शिल्प अत्यंत सशक्त है।

9.8 भाषिक प्रौढ़ता

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो 'बूढ़ी काकी' की अपेक्षा 'बेटों वाली विधवा' में प्रेमचंद की भाषा और शब्दावली अधिक सुदृढ़, सशक्त व परिमार्जित प्रतीत होती है, क्योंकि भाषा में बड़ी सहजता से मर्म व शब्दों में कुशलतापूर्वक संवेदना भर दी गई है। तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज व मिश्रित शब्दों का प्रयोग तो यथास्थान किया ही गया है, व्यंग्यात्मक शब्दावली, व्यंजनापूर्ण सूत्र और उपहासपूर्ण वाक्य पात्रों के आचरण, उनकी मनोदशा एवं सटीक बिंबों को दर्शाने हेतु प्रयुक्त किए गए हैं तथा लोकप्रचलित शब्दावली का प्रयोग बहुतायत में किया गया है। भाषिक प्रौढ़ता को दर्शाते हुए प्रेमचंद ने देशकाल, वातावरण, पात्रों के परिवेश, उनकी शिक्षा और भूमिका के अनुकूल अभिव्यक्तिपूर्ण भाषा की संरचना व संयोजना की है। फूलमती के स्वकथन का एक अंश, जो उसकी निश्छलता को बड़ी अच्छी तरह जाहिर करता है, का भाषिक सामर्थ्य देखिए– ''लड़के ही तो हैं, समझे होंगे कुछ किफायत करनी चाहिए। मुझसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्मा तो खुद हरेक काम में किफायत करती हैं। अगर इन्हें मालूम होता कि इस काम में मैं किफायत पसंद न करूँगी, तो कभी इन्हें मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता।''

तटस्थ वर्णन हेतु प्रेमचंद ने तत्सम शब्दावली युक्त सजावटी भाषा के स्थान पर यथार्थपरक भाषा का प्रयोग किया है– ''आज चालीस वर्षों से घर के प्रत्येक मामले में फूलमती की बात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ खर्च किए गए, एक कहा तो एक! किसी ने मीन-मेख न की। यहाँ तक कि पं. अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न करते थे; पर आज उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है! इसे वह क्योंकर स्वीकार कर सकती!''

'पंडित', 'स्वायत्त', 'षड्यंत्र', 'विद्या', 'औषधालय', 'धर्मसंकट', 'न्यायाधीश', 'वात्सल्य' आदि ढेरों तत्सम शब्द हैं, जिनका प्रयोग 'बेटों वाली विधवा' में किया गया है। 'पक्का', 'छाँटना', 'न्योछावर', 'अम्माँ', 'छाती', 'गहना', 'सुधार' आदि सैकड़ों तद्भव शब्दों का प्रयोग करके कहानी की अर्थवत्ता को सरल बनाया गया है। 'मरजाद', 'लौंडा', 'नेवता', 'चौकड़ी', 'तरकारी', 'छीछालेदर', 'लल्ला', 'थुड़ी-थुड़ी', 'कढ़ाव', 'सोहाग', 'पतीली' आदि देशज शब्द भी प्रयोग में लाए गए हैं। 'गोकि', 'बग़ीचा', 'कमी-बेशी', 'शोरबा', 'ऐनक', 'नाहक', 'खामख्वाह (ख़ामख़ाह)' (फ़ारसी); 'मकान', 'मौत', 'फ़िक्र', 'हुक्म', 'किफ़ायत', 'अख़्तियार', 'तंबीह' (अरबी); 'कनस्तर', 'कैपिटल', 'सिविल सर्विस', 'एम.ए.', 'बी.ए.' (अंग्रेजी) जैसे अनेक विदेशज शब्दों के सफल प्रयोग भी कहानीकार द्वारा किए गए हैं।

कुल मिलाकर कहा जाए तो निश्चित रूप से आलोच्य कहानी में प्रेमचंद की भाषिक प्रौढ़ता झलकती है।

9.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गए होंगे कि–

- प्रेमचंद की कहानियों की सफलता केवल कथ्य पर ही नहीं, बल्कि शिल्प पर आधारित होती है और 'बेटों वाली विधवा' कहानी का उद्देश्य पारिवारिक झंझावातों के बीच पतिविहीन वृद्धा नारी की स्थिति तथा उसकी विवशता की परिणति को प्रकट करना है।

- पारंपरिक और जकड़ी हुई मानसिकता के कारण वृद्ध व असहाय स्त्रियाँ त्रासदी हेतु अभिशप्त होती हैं और उनकी त्रासदी का निवारण सोच बदलने पर ही संभव है।

- आलोच्य कहानी में फूलमती, जो पंडित अयोध्यानाथ की विधवा है और चार बेटों व एक बेटी की माँ है, पति के निधन के बाद बारहवें दिन ही अपने बेटों के बदले हुए रुख से आहत होती है। लालची और स्वार्थी पुत्रों के चलते वह चाहकर भी तेरहवीं का भोज पति की प्रतिष्ठा और संपन्नता के अनुरूप नहीं करवा पाती है। छल-कपट द्वारा चारों बेटे माँ की ममता को ठगते हैं और सारी संपत्ति हथिया लेते हैं। पति की इच्छा के अनुसार पहले से निश्चित जगह पर वह अपनी पुत्री का भी विवाह नहीं कर पाती है और दुष्ट बेटे इकलौती बहिन का विवाह एक अधेड़ से कर देते हैं। अनेक अत्याचारों को सहने के बावजूद सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वह परिवार की नौकरानी की तरह घर में बनी रहती है। अंत में वह दुर्घटनावश गंगा में डूबकर मर जाती है।

- दृश्यात्मक व परिदृश्यात्मक प्रविधियों के सापेक्ष यथार्थ-चित्रणों, सूत्र वाक्यों, व्यंग्यों, सादृश्यों के अलावा फरेब का मकड़जाल, संवेदना-शिल्प के सहारे कहानी का विस्तार करते हुए प्रेमचंद नारी से संबंधित दृष्टि निरूपित करने में सफल होते हैं। कथानक की कुछ न्यूनताओं के बावजूद अपनी भाषिक प्रौढ़ता और सहज शब्दावली के बल पर प्रेमचंद संवेदना का सार्थक बिंब निर्मित करते हैं।

9.10 अभ्यास

1. फूलमती का चरित्र-चित्रण करते हुए उसकी पीड़ाओं के कारण बताइए।

2. 'बेटों वाली विधवा' कहानी की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

3. प्रेमचंद की नारी विषयक दृष्टि का निरूपण 'बेटों वाली विधवा' कहानी के आधार पर कीजिए।

4. 'बेटों वाली विधवा' कहानी के आधार पर प्रेमचंद की दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक प्रविधियों को समझाइए।

5. क्या पंडित अयोध्यानाथ के देहांत बिना 'बेटों वाली विधवा' कहानी पूरी हो सकती थी? यदि नहीं तो क्यों?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. *कहानी : नई कहानी, डॉ. नामवर सिंह,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

2. *प्रेमचंद की भाषा : डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय,* राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर,

3. *हिंदी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास : डॉ. मोहन अवस्थी,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

4 *कहानी : नई कहानी, डॉ. नामवर सिंह,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

5. *प्रेमचंद की भाषा : डॅा. कौशलनाथ उपाध्याय,* राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर,

6. *हिंदी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास : डॉ. मोहन अवस्थी,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।